पुष्प ५

अहं च ललिता-देवी, पुं-रूपा कृष्ण-विग्रहा।

प्रकाशक : परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
श्रीचण्डी-धाम, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६

पर-ब्रह्म की चिन्मय-शक्तियाँ

जय माँ काली!
परब्रह्म-रूपां भजामि

जय माँ तारा!
परब्रह्म-रूपां भजामि

जय माँ षोडशी!
परब्रह्म-रूपां भजामि

जय माँ भुवनेश्वरी!
परब्रह्म-रूपां भजामि

जय माँ छिन्नमस्ता!
परब्रह्म-रूपां भजामि

'चण्डी'-पुस्तक-माला की कुछ उपयोगी पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य
➢ श्री दुर्गा-साधना (२ पुस्तकें)	५५/-
➢ देवी-सूक्त	४०/-
➢ मन्त्रात्मक सप्तशती	६००/-
➢ सार्थ चण्डी (श्रीदुर्गा सप्तशती)	२५०/-
➢ अद्भुत सप्तशती	१५०/-
➢ हवनात्मक अद्भुत सप्तशती	१२५/-
➢ सम्पुटित श्रीदुर्गा-सप्तशती	४०/-
➢ सप्त-दिवसीय सप्तशती-पाठ	३५/-
➢ नारायणी-स्तुति	४०/-
➢ सप्तशती के विविध प्रकार	२५/-
➢ साधना-रहस्य	८०/-
➢ दीक्षा-प्रकाश	३५/-
➢ श्रीकाली-कल्पतरु	३००/-
➢ श्रीतारा-कल्पतरु	३५/-
➢ श्रीबाला-कल्पतरु	३५/-
➢ शक्रादि-स्तुति	२५/-
➢ रात्रि-सूक्त	१५/-
➢ श्रीरमा-पारायण	३५/-
➢ श्रीदुर्गा-कल्पतरु	१५/-
➢ नव-ग्रह-साधना	१५०/-
➢ कुण्डलिनी-साधना	४०/-
➢ तन्त्र-विशेषांक	३०/-
➢ अघोर-पन्थ का निरूपण	२५/-
➢ श्रीमहा-गणपति-साधना	५०/-
➢ साधक का संवाद	२५/-
➢ धर्म-मार्ग पर	२५/-
➢ सांख्यायन तन्त्र	१००/-

वर्ष ७२ (२)

'कौल-कल्पतरु' चण्डी की विशेष प्रस्तुति

श्रीललिता-सहस्र-नाम

पुष्प-५

(७५५) श्रीचण्डिका

से

(१०००) श्रीललिताम्बिका

तक

*

व्याख्याकार

'कौल-कल्पतरु' श्रीश्यामानन्द नाथ

*

प्रार्थना एवं स्तुतिकार

'आशु-कवि' पं० हरिशास्त्री दाधीच

*

आदि-सम्पादक

प्रातः-स्मरणीय 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल

सम्पादक

ऋतशील शर्मा

*

प्रकाशक

पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६ ☎ ९४५०२२२७६७

Email: chandi_dham@rediffmail.com

अनुदान ४०/-

पर्व-पत्र

भगवती काली, भगवती लक्ष्मी एवं भगवती ललिता की पूजा के विशेष पर्व

◈ आश्विन पूर्णिमा (शरत् पूर्णिमा) शुक्रवार, १८ अक्टूबर, २०१३ ◈

'चण्डी' के आदि-सम्पादक कुल-भूषण पं० रमादत्त शुक्ल जी की चतुर्थ पुण्य-तिथि

◈ धनवन्तरि-त्रयोदशी, शुक्रवार, ०१ नवम्बर, २०१३ ◈

श्रीकामेश्वरी-जयन्ती। श्रीललिता-पूजा।

◈ 'दीपावली'-कार्तिक अमावास्या, रविवार, ०३ नवम्बर, २०१३ ◈

दीपावली की महा-निशा में 'लक्ष्मी-पूजन' के साथ-साथ 'भगवती काली', भगवती श्रीललिता के ध्यान-पूजन एवं स्तोत्र आदि के पाठ का विशेष महत्त्व है।

◈ 'गो-वर्धन-पूजा'-कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा, सोमवार, ०४ अक्टूबर, २०१३ ◈

कार्तिक शुक्ला प्रतिप्रदा को गाय के गोबर का पर्वत बनाकर, उसमें करीषिणी लक्ष्मी की पूजा कुन्द आदि पुष्पों से करनी चाहिए तथा खीर का 'नैवेद्य' अर्पित करना चाहिए। विशेष पूजा हेतु षोडश लक्ष्मी भगवती ललिता की पूजा करनी चाहिए।

◈ 'श्री सूर्य-षष्ठी-व्रत'-कार्तिक शुक्ला चतुर्थी-षष्ठी, ६ से ८ नवम्बर, २०१३ ◈

बुधवार, ६ नवम्बर २०१३ से त्रि-दिवसीय श्रीसूर्य-षष्ठी-व्रत का पर्व विशेष रूप से बिहार में मनाया जाएगा। अपने कुल-परिवार की परम्परा के अनुसार 'व्रत' आदि का पालन करते हुए 'सप्तशती' आदि का 'पाठ' करना चाहिए। भगवती ललिता की उपासना हेतु सूर्य द्वारा उपासित मन्त्र 'ह स क ह ल ह्रीं' 'स ह क ल ह्रीं' 'स क ह ल ह्रीं' का जपादि करना चाहिए।

◈ 'अक्षय-नवमी'-कार्तिक शुक्ला नवमी, सोमवार, ११ नवम्बर, २०१३ ◈

कार्त्तिक शुक्ला नवमी महा-त्रिपुर-सुन्दरी श्रीललिता की पूजा की विशेष तिथि है। इस दिन षोडश-लक्ष्मी-स्वरूपा श्रीललिता की पूजा आँवले के वृक्ष के नीचे बैठकर करनी चाहिए।

◈ देवात्थान-पूजा-कार्तिक शुक्ला एकादशी, बुधवार, १३ नवम्बर, २०१३ ◈

कार्तिक शुक्ला एकादशी में भगवान् विष्णु का प्रबोधन होता है। अपने कुल की परम्परा के अनुसार 'प्रबोधनोत्सव' कर रात्रि में भगवान् विष्णु एवं उनके वक्ष-स्थल-स्थित षोडश लक्ष्मी-स्वरूपा भगवती ललिता का ध्यान-पूजन करना चाहिए। ऐसे ही कार्तिक शुक्ला द्वादशी में भगवती लक्ष्मी-सहित भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए।

◈ त्रिपुरोत्सव-कार्तिक पूर्णिमा, रविवार, १७ नवम्बर, २०१३ ◈

कार्तिक पूर्णिमा को 'त्रिपुरोत्सव' मनाया जाता है। इस दिन भगवती महा-त्रिपुर-सुन्दरी श्रीललिता का 'ध्यान-पूजन-जप एवं तर्पण' का विशेष महत्त्व है।

◈ मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमी 'भैरवाष्टमी'-मङ्गलवार, २५ नवम्बर, २०१३ ◈

'भैरवाष्टमी' के पावन अवसर पर भगवान् बटुक-भैरव की पूजा के साथ भगवती काली या भगवती श्रीललिता की पूजा का विशेष महत्त्व है।

सूचना - 'चण्डी'-पुस्तक-माला, वर्ष ७२ के अन्तर्गत श्रीबगला-कल्पतरु, पुष्प २ शीघ्र भेजा जाएगा।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप अपर्णा अर्थात् पत्रों से रहित होते हुए भी सर्वोत्कृष्ट हो क्योंकि आपसे जो याचना करता है, उसकी आप सभी मनो-कामनाएँ पूर्ण करती हो।

***

(७५५) श्रीचण्डिका

क्रोध-युक्ता। इसके लक्ष्यार्थ से '**ब्रह्म**' का बोध होता है। **चण्डी, चण्डिका, चाण्डाली** एक ही पर्याय-वाचक संज्ञाएँ हैं, जो एक ही '**चड़ि कोपे**' धातु से बनी हैं। चण्ड-पद का प्रयोग असीमत्व (इयत्ता-रहितत्त्व) वाचक है। इयत्ता-रहितत्त्व परिच्छेद-रहितत्त्व है, जो चण्ड का साधारण गुण-शीलत्व है। इसी अपरिच्छेद्य गुण के कारण चण्ड-पद '**ब्रह्म-लिङ्ग**' का द्योतक है। इससे भीषणत्व का बोध होता है, जो '**ब्रह्म**' का एक प्रधान लक्षण है। '**श्रुति**' की उक्ति है कि '**ब्रह्म**' भीषण अर्थात् '**चण्ड**' है क्योंकि '**ब्रह्म**' के डर से ही विश्व की शृङ्खला स्थिर है। इसी के डर से हवा चलती है, सूर्य उदय होता है और डूबता है, इत्यादि–

'भीषास्माद् वातः पवते, भीषोदेति तथा सूर्य्यः।
भीषास्मादग्निश्चन्द्रश्च, मृत्युर्धावति पञ्चमः।
इति तस्मादुच्यते भीषणमिति' (नृसिंह पूर्व-तापनीय)।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आपके भय से जगत् में हवाएँ चलती हैं। आपके भय से सूर्य तपता है और प्रकाश करता है। आपके भय से चन्द्रमा सोम बरसाता है और आपके भय से आकाश से रसों की वर्षा होती है। आपके भय से शेष-नाग पृथ्वी को धारण करते हैं। आप मुझ पर प्रसन्न होइए।

***

(७५६) श्रीचण्ड-मुण्डासुर-निषूदिनी

चण्ड और **मुण्ड** असुर-द्वय को मारनेवाली। इसकी कथा '**सप्तशती**' में प्रसिद्ध है। **चण्ड** और मुण्ड का आध्यात्मिक तात्पर्य **काम** और **क्रोध** दो आसुरी सर्गों से है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! चण्ड और मुण्ड नामक असुरों को मारनेवाली चण्ड-मुण्डासुर-निषूदिनी माता श्री ललिताम्बा के अनुग्रह को प्राप्त करो और अपने सभी शत्रुओं को नष्ट करो।

***

(७५७) श्रीक्षराक्षरात्मिका

'**क्षर**' अर्थात् नाशवान् और '**अक्षर**' अर्थात् अनाशवान् स्वरूपा। इससे उभयात्मा-स्वरूपा का बोध होता है। '**ब्रह्म**' के '**क्षर**' और '**अक्षर**' दोनों रूप हैं। ये दोनों हैं **कूटस्थ** या '**अक्षर**' और दूसरा

सर्व-भूतस्थ या 'क्षर'–'क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थाऽक्षर उच्यते।' इसी रूप को 'सदसद् ब्रह्म' या 'चिद्चिद् ब्रह्म' कहते हैं।

अथवा 'क्षर' से अनियत संख्या अर्थात् असंख्य का बोध होता है। इससे एकानेकाक्षरा-स्वरूपा का बोध होता है। भगवती, जैसा 'वराह-पुराण' कहता है, सर्वाक्षर-मयी 'एकाक्षरा' है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! 'क्षर' अर्थात् समस्त प्राणी और 'अक्षर' अर्थात् कूटस्थ–दोनों आपके द्वारा धारित होते हैं। आप हमारे मानस-सरोवर में राजहंस की तरह विराजमान रहो।

***

(७५८) श्रीसर्व-लोकेशी

सब लोकों की स्वामिनी। लोक चौदह हैं। सात ऊपरवाले, सात नीचेवाले। इससे **'परमेश्वरी'** का बोध होता है। अथवा **'लोक'** से भाव का भी तात्पर्य है। इस भाव में **'सर्व-भावेश्वरी'** का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! सभी लोकों की ईश्वरी विश्व-माता श्री ललिताम्बा को ध्याओ, भजो और त्रि-लोकों में घटित होनेवाली बातों को जानो।

***

(७५९) श्रीविश्व-धारिणी

विश्व को धारण करनेवाली। इससे **'विश्व-रूपा'** और **'जगद्धात्री'** दोनों भावों का तात्पर्य है। विश्व को अपने में धारण करे, इस प्रकार विश्व-रूपा का और विश्व की धारणा अर्थात् स्थिति जिससे है, इस भाव में **'जगद्धात्री'** का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! भूमि-जल-अग्नि, सूर्य-चन्द्र-तारे और पक्षी-पशु-मानव आपकी विश्व-धारिणी शक्ति के अवलम्बन पर ही ठहरे हुए हैं। हम पर आपकी कृपा सदैव बनी रहे।

***

(७६०) श्रीत्रि-वर्ग-दात्री

तीन वर्ग या समूह को देनेवाली। **त्रि-वर्ग** से १. धर्म, २. अर्थ और ३. काम का बोध होता है। यह संज्ञा प्रकरण-वश है, अन्यथा भगवती चतुर्वर्ग अर्थात् १. धर्म, २. अर्थ, ३. काम और ४. मोक्ष को देनेवाली है, जैसा पूर्व उल्लेख हो चुका है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! त्रि-वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम — इन तीनों को देनेवाली भगवती श्रीललिताम्बा को भजो, ध्याओ और मोक्ष को अपनी आज्ञा के वशीभूत कर लो।

***

(७६१) श्रीसुभगा

सुन्दर भगवाली। '**भग**' से श्री, काम, माहात्म्य, वीर्य्य, यत्न, कीर्ति का तात्पर्य है। संक्षेप में '**भग**' से ऐश्वर्य का बोध होता है। अथवा '**भग**' से '**सूर्य**' का भी बोध होता है। इस भाव में सूर्य को सुन्दर करनेवाली है। इससे सौर-कर्म की अन्तःस्थिता शक्ति का बोध होता है। कन्या-प्रकरण में पाँच वर्ष की कुमारी की संज्ञा '**सुभगा**' है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! श्री, शोभा, सम्पद्, कीर्ति, कान्ति, यश, धर्म आदि सभी गुण आप में हैं। जो आपको पूजते हैं, वे ऐश्वर्य-सम्पन्न हो प्रसिद्ध होते हैं।

(७६२) श्रीत्र्यम्बिका

त्रिनेत्रा। अथवा तीनों अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की अम्बिका–'त्रयाणां अम्बिका' ('त्रिनेत्रा' की विशद् व्याख्या '**श्रीतारा-कल्पतरु**' पुस्तक में देखिए)।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! महा-देव ने जब अपने तृतीय नेत्र से काम-देव को भस्म कर दिया था, तब उनकी पत्नी रति की प्रार्थना पर करुणा-पूर्ण होकर आपने तीसरा नेत्र धारण किया था और तभी आप 'त्र्यम्बिका' कहलाई थीं। सूर्य, चन्द्र और अग्नि तीन नेत्र आपके हैं, इसलिए भी आप त्र्यम्बिका कहलाती हैं।

***

(७६३) श्रीत्रि-गुणात्मिका

त्रि-गुण अर्थात् सत्त्व, रज और तमो-गुण-स्वरूपा। भगवती जिस प्रकार गुणातीता है, उसी प्रकार '**गुण-मयी**' भी है। दोनों यही है, कारण इसके अतिरिक्त तो कुछ है ही नहीं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! सत्त्व, रजस् और तमस् — तीन गुणोंवाली माता श्रीललिताम्बा को ध्याओ, भजो और शुद्ध अद्वैत ज्ञान को प्राप्त करो।

***

(७६४) श्रीस्वर्गापवर्गदा

स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) को देनेवाली। क्षयिष्णु अर्थात् नाशवान् सुख-वर्ग को '**स्वर्ग**' कहते हैं और अनाशवान् अर्थात् नित्य सुख ही '**अपवर्ग**' है। '**स्वः**'-पद वही है, जो दुःख से सम्भिन्न भी नहीं है और न दुःख से ग्रस्त ही है (श्रुति)-

यन्न दुःखेन सम्भिन्नं, न च ग्रस्तमनन्तरम्।
अभिलाषोपनीतं यत्, तत् सुखं स्वः-पदास्पदम्।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप स्वर्गापवर्गदा अर्थात् स्वर्ग व मोक्ष देनेवाली हो। आप स्वर्ग में स्थित देवों को भी मोक्ष प्रदान करती हो। आपको बारम्बार प्रणाम है।

***

(७६५) श्रीशुद्धा

शुद्ध-तत्त्व-स्वरूपा। शुद्ध अर्थात् अविद्यात्मक मल से रहित। अथवा निस्तत्त्वा। इससे अनिर्वचनीया 'अनुपहित चेतना' का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! माता श्रीललिताम्बा को ध्याओ-भजो, जिनमें लेश-मात्र भी मालिन्य नहीं है और शुद्ध भाववाली विद्याओं को प्राप्त करो।

***

(७६६) श्रीजपा-पुष्प-निभाकृति

जपा-पुष्प के समान स्वरूपवाली। 'आकृति' से यहाँ केवल लाल रङ्ग का ही बोध होता है। अथवा यहाँ 'अकार' के प्रश्लेषण से दूसरा पद अजपा है। जिस प्रकार 'धराधर-सुता' पद बनता है। इस भाव में 'अजपा-मन्त्र-स्वरूपा' है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो आपको लाल वर्णवाले जपा-पुष्प के समान चिन्तन करते हैं, उन्हें उनके प्रिय-जन रात-दिन स्मरण करते हैं।

***

(७६७) श्रीओजोवती

ओज अर्थात् बल-वती। बल से विद्युत् का बोध होता है—'बलमिति विद्युति' (तैत्तिरीय)। इससे 'ब्रह्म' का बोध होता है। 'ओज' शक्ति-वाचक है। इस प्रकार धर्मी-शक्ति का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! ओज-पूर्ण माता श्रीललिताम्बा का नित्य पूजन कर उनकी आरती उतारो और सहज रूप से उनकी कृपा से तेज, बल व वैभव को प्राप्त करो।

***

(७६८) श्रीद्युति-धरा

कान्ति-मती अर्थात् सुन्दरी। 'द्युति' से प्रकाश का भी बोध होता है। इससे प्रकाश-मती है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त मूँगे के समान लाल-लाल वस्त्र पहने हुए और माणिक्य से जड़े शुद्ध स्वर्ण के आभूषण धारण करनेवाले आपके द्युति-स्वरूप का

चिन्तन करते हुए, लाल-लाल कमल-पत्रों से आपका पूजन करता है, वह आठों प्रकार की श्रियों, लक्ष्मियों को प्राप्त करता है।

***

(७६९) श्रीयज्ञ-रूपा

'यज्ञ' नाम विष्णु अर्थात् 'ब्रह्म' का है—'व्यापनाद् विष्णुः।' 'श्रुति' कहती है—'यज्ञो वै विष्णुः।' इस भाव में 'ब्रह्म-रूपा' है। 'गीतोक्ति' (३-१५) है–

तस्मात् सर्व-गतं ब्रह्म, नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।

अथवा यज्ञ ही रूप जिसका है–'यज्ञा एव रूपमस्याः।' यज्ञ से विशेषतया ज्ञान-यज्ञ का ही तात्पर्य है। ज्ञान त्रि-पुटी (ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय) का एक अङ्ग है। ज्ञेय का रूप ज्ञान ही है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! सुवर्ण जैसी सुन्दर स्वाहा-प्रिया यज्ञ-रूपा परमेश्वरी माता श्रीललिताम्बा को ध्याओ, भजो और चित्त-कुण्ड में नित्य आहुतियाँ देते हुए स्वयं भी ज्योतिर्मय हो जाओ।

***

(७७०) श्रीप्रिय-व्रता

व्रत जिसकी तुष्टि करते हैं। 'व्रत' से भगवती-विषयक उपासना-निमित्त दृढ़ नियमानुकूल सङ्कल्प का तात्पर्य है। इस भाव में उपासना के सङ्कल्प से प्रसन्न होती है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त आप प्रिय-व्रता की पूजा करते हुए आपके प्रिय तृतीया आदि व्रतों को करते है, उन्हें आपकी परम कृपा की प्राप्ति होती है।

***

(७७१) श्रीदुराराध्या

दुःख से अर्थात् कठिनता से आराध्या अर्थात् उपास्या। यह दुर्गमा या दुर्गा का पर्याय-वाचक पद है। इससे यह बोध होता है कि भगवती दुर्ज्ञेया है अर्थात् बड़ी कठिनता से जानी जा सकती है। आराधना या उपासना का रहस्यार्थ है ज्ञान।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप चञ्चल इन्द्रियवाले देह-धारियों के लिए 'दुराराध्या' अर्थात् कठिनाई से दिखनेवाली हो। जो भक्त सावधानी से, विशुद्ध भाव से आपको भजते हैं, ध्याते हैं, उन्हें ही आपके दर्शन सुलभ होते हैं।

***

(७७२) श्रीदुराधर्षा

बड़ी कठिनता से जिसका स्वायत्तीकरण हो। स्वायत्तीकरण से ज्ञान के परिपाचन का तात्पर्य है। भाव यह है कि भगवती के ज्ञान को निरन्तर वश में रखना, उसे जानने से भी अधिक कठिन है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आप दुराधर्षा को नाना प्रकार से प्रसन्न करने का प्रयास करता है, वही सबको वश में करता हुआ अपने शत्रुओं को त्रस्त करता है।

***

(७७३) श्रीपाटली-कुसुम-प्रिया

लाल व उजले रङ्गवाले पाटली-पुष्प को पसन्द करनेवाली। 'पद्म-पुराण' में कहा है कि शिव बिल्व-वृक्ष में रहते हैं और शिवा पाटली-वृक्ष में—श्री-वृक्षे शङ्करो देवः, पाटलायां तु पार्वती।

इसका रहस्य भाव यह है कि भगवती पर-विन्दु-रूपिणी रक्त-शुक्ल-विन्दु-द्वय से व्यञ्जित मिश्र शक्ति-शिव-रूपिणी है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे जपा के पुष्पों की प्रिया परमेश्वरी माता श्री ललिताम्बा मुझ पर प्रसन्न होइए। मुझे अपना सान्निध्य प्रदान कीजिए।

***

(७७४) श्रीमहती

बडी। सबसे बड़ी भगवती है, जैसा 'श्रुति' कहती है—'महतो महीयान्।' अथवा देवर्षि नारद की 'महती' नाम की वीणा, तत्-स्वरूपा।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! महान् ओजवाली, महनीय प्रशंसनीय कीर्तिवाली माता श्री ललिताम्बा को ध्याओ-भजो और बड़े-से-बड़े हर्ष को प्राप्त करो।

***

(७७५) श्रीमेरु-निलया

मेरु-पर्वत पर रहनेवाली। यहाँ स्थूल मेरु-पर्वत से नहीं, श्री-चक्र के मध्य में स्थित बिन्दु से तात्पर्य है। यही पराम्बा का निवास-स्थान है (देखें 'तन्त्र-राज तन्त्र', २८ वाँ पटल)। 'ज्ञानार्णव तन्त्र' में उद्धृत नवाक्षर-मन्त्र का नाम है 'मेरु', तत्-स्वरूपा। अथवा भगवती त्रिपुर-सुन्दरी के मन्त्र 'मेरु' से उत्पन्न हुए हैं—'महा-त्रिपुर-सुन्दर्या मन्त्रा मेरु-समुद्भवाः।'

'मेरु'—'निविकरणे+रु+उणादि' का वाच्यार्थ है, प्रकाश फैलानेवाला। इससे परं-ज्योति या पर-विन्दु का बोध होता है, जो मध्य में रहकर अपने चारों ओर प्रकाश फैलाता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! नित्य बढ़ते विलासवाली, मन्द व मधुर मुस्कुराहट से दसों दिशाओं को प्रकाशित करनेवाली, भूमि-चन्द्र-शिव-भुवनादि नौ अक्षरवाले मेरु-मन्त्र में निवास करनेवाली माता श्री ललिताम्बा को ध्याओ और नित्य विकसित होनेवाले आनन्द को प्राप्त करो।

***

(७७६) श्रीमन्दार-कुसुम-प्रिया

दिव्य मन्दार-वृक्ष के पुष्पों को पसन्द करनेवाली। श्वेत अर्क (अकवन, मदार) को भी 'मन्दार' कहते हैं। 'कुसुम' या पुष्प चित्त-वृत्ति का द्योतक है और पुष्प दैवी होने से दैव सर्ग अर्थात् सात्विक होने का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! देव-गण जिनकी वन्दना करते हैं, उन मन्दार देव-तरु के पुष्पों की प्रिया माता श्री ललिताम्बा को पूजो और उनकी कृपा से सभी सम्पदाओं को प्राप्त करो।

***

(७७७) श्रीवीराराध्या

वीरों की उपास्या। इससे स्पष्ट है कि भगवती वीरों द्वारा ही आराधन करने योग्या है अर्थात् पशु-भाववाले इसकी उपासना के अधिकारी नहीं हैं। 'वीर' के लक्षण अनेक हैं, जो 'तन्त्र-शास्त्र' में दिए हैं, किन्तु मुख्य लक्षण अविद्या अर्थात् द्वैत-भाव को दूर कर अद्वैत-भावना से साधन करना है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! वीरों द्वारा आराधित माता श्री ललिताम्बा को पूजो और ओज, वीर्य, दीप्ति, तीव्र प्राण-शक्ति एवं बढ़ती हुई विद्या को प्राप्त करो।

***

(७७८) श्रीविराट्-रूपा

विराट् अर्थात् सर्व-व्यापी-रूपा। यह 'महती' का पर्याय-वाचक है। इससे विराट् पुरुष अर्थात् 'ब्रह्म' का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! सन्ध्या-काल में अपने ललाट में स्थित आज्ञा-चक्र में विराट्-रूपिणी महामाया श्रीललिताम्बा का ध्यान करो और अपने ज्ञान-चक्षुओं को प्रज्वलित कर लो।

***

(७७९) श्रीविरजा

रजो-गुण-रहिता। इससे सत्त्व-गुणात्मिका का बोध होता है। अथवा 'रज' से पाप का भी बोध होता है। इस भाव में अर्थ है निर्मला। अथवा 'विरजा' नाम की विशिष्ट देवी है, जो उत्कल (उड़ीसा) देश की विरजा नामक पीठ की अधिष्ठात्री है (ब्रह्माण्ड-पुराण)–

'विरजे विरजा माता, ब्रह्मणा सम्प्रतिठिता।'

अथवा '**वि**' से विशेष का भी तात्पर्य हो सकता है। पूर्व-भाव में '**वि**' से विगत का तात्पर्य था। इस भाव में '**विरजा**' का अर्थ है विशिष्ट '**रजा**' अर्थात् रजो-गुणात्मिका। यह भी युक्त है क्योंकि भगवती ललिता विश्व-रूपिणी है। अत: शास्त्रों में वह रजो-गुणात्मिका कही गई है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपके पन्द्रह अक्षरोंवाली विद्या को जपते हैं और आपको विरजा नदी के रूप में भजते हैं, वे अतुलित सत्त्ववान हो परम उत्कृष्ट निष्ठा व प्रतिष्ठा को प्राप्त करते हैं।

***

(७८०) श्रीविश्वतोमुखी

सर्वतोमुखी। इससे भगवती के पारमार्थिक रूप का बोध होता है (श्रुति)–

'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः'

'**विश्वतः**' से सर्व-अवच्छेद का तात्पर्य है अर्थात् भगवती की जिस किसी प्रकार की कल्पना की जाती है, वह वैसी ही उस-उस साधक या ध्याता के निमित्त आविर्भूत होती है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप एक काल में सभी दिशाओं में अपने भक्तों को समान रूप से देखती हो और उन्हें वरदान देने के लिए एक मूर्ति होते हुए भी अनेक मुख धारण करती हो। आपकी जय हो।

***

(७८१) श्रीप्रत्यग्-रूपा

अन्तर्मुखी चित्त-वृत्ति अर्थात् आत्माकार-वृत्ति। इसकी विपरीत वृत्ति को पराङ्मुखी या अनात्माकार-वृत्ति कहते हैं। यह वृत्ति अन्तरात्मा की है। जीवात्मा की ऐसी वृत्ति तभी होती है, जब अन्तरात्मा से जीवात्मा का अभेद-भाव हो जाता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको अपने गुरुवर से जान कर, अन्तर्दृष्टि से अपने अन्तर निज में देखता है, वह आप सर्व-विश्व-व्याप्त की कृपा से विश्व की सभी बातों को जान लेता है।

***

(७८२) श्रीपराकाशा

'पर' अर्थात् श्रेष्ठ (जिसके पर और दूसरा न हो) आकाशवाली। इससे चिदाकाश का बोध होता है, भूताकाश का नहीं। यद्यपि मण्डल-ब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार १. आकाश, २. पराकाश,

३. महाकाश, ४. तत्त्वाकाश और ५. सूर्याकाश–इन ५ आकाशों में से दूसरा ही '**पराकाश**' कहलाता है, किन्तु यहाँ '**पराकाश**' से चिदाकाश ही समझना उचित है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको प्राणायाम से अपने हृदय के अवकाश में क्षण भी साध लेता है, वह शरीर से छोटा और बड़ा भी बन सकता है। उसे सभी अणिमा-महिमा-लघिमा-गरिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

***

(७८३) श्रीप्राणदा

प्राण को देनेवाली। इससे रस का बोध होता है, जो '**ब्रह्म**'-वाचक है–'**रसो वै सः**'। अथवा **प्राण-दात्री से ब्रह्म-ज्ञान-दात्री महा-विद्या** का बोध होता है, जब कि '**प्राण**' को ब्रह्म-वाचक मानते हैं। '**ब्रह्म-सूत्र**' के '**प्राणाधिकरण**' से ऐसा ही बोध होता है। इसी से भगवती का एक नाम '**प्राण-रूपिणी**' है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आप 'प्राणदा' को गुरु से समझ कर आपकी उपासना करता है, उसे ब्रह्म-तत्त्व बार-बार प्रकाशित होता है।

***

(७८४) श्रीप्राण-रूपिणी

प्राण-स्वरूपा। '**प्राण**' शब्द '**प्रा**'-धातु (पूरण के अर्थ में) से बना है। इससे '**ब्रह्म**' का तात्पर्य है। '**श्रुति**' कहती है कि '**प्राण**' ही **ब्रह्म** है–

प्राणो ब्रह्म, कं ब्रह्म, खं ब्रह्म।

'**प्राण**' से **पदार्थ की अस्तित्व-शक्ति** का बोध होता है। निष्प्राण कोई वस्तु नहीं है। मनुष्य, पशु, पक्षी, पत्थर आदि सभी में **प्राण-शक्ति** है। किसी में यह **प्राण-शक्ति** इतनी चैतन्य है कि हम उसे अनुभव कर सकते हैं और तथा-कथित जड़ पदार्थों में यह सुप्त रहती है, जिससे हम इसकी चेतना को अनुभव नहीं कर पाते। शव में भी '**प्राण**' है। इससे शव की स्थिति क्षणिक ही सही, किन्तु है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आप प्राण-रूपिणी को प्राणों पर आरोपित कर प्राणों से ही पूजता है, वह पर पुरुषों को प्राणित-जीवित करने में सिद्ध हो जाता है।

***

(७८५) श्रीमार्तण्ड-भैरवाराध्या

सूर्योपासिता। '**मार्तण्ड**' नाम सूर्य का है। मरे हुए अण्ड में जो हुआ–'**मृतेऽण्डे येन संयातः।**' इसकी वैज्ञानिक व्याख्या यह है कि **सौर-मण्डल** के पूर्ण रूप से उष्णता-रहित होने पर वह चन्द्र-

लोक के समान हो जाता है। फिर काल-क्रम से आकाश-मण्डल में घूमते-घूमते किसी नक्षत्र से टक्कर (घषर्ण) होने पर घर्षण की गर्मी से सूर्य की उत्पत्ति होती है। इसी सिद्धान्त पर सूर्य को मार्तण्ड कहते हैं।

'भैरव' से मोक्ष देनेवाले अर्थात् ज्ञान का बोध होता है। सूर्य जिस प्रकार बाह्य अन्धकार को नष्ट करता है, उसी प्रकार अपने सूक्ष्म रूप के ज्ञान द्वारा आन्तरिक अन्धकार अर्थात् अज्ञान का भी नाश करता है।

अथवा श्री-चक्र में २२वें और २३वें प्राकार के मध्य में मार्तण्ड-भैरव की, भगवती के उपासक-रूप में, स्थिति है। आठ भैरवों में से 'मार्तण्ड-भैरव' ने भगवती ललिता की उपासना की है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! अपने कार्यों की सिद्धि के लिए मार्तण्ड-भैरव द्वारा आराधनीया महेश्वरी श्री ललिताम्बा का आराधन करो।

***

(७८६) श्रीमन्त्रिणी-न्यस्त-राज्यधूः

'मन्त्रिणी' के ऊपर राज्य-भार छोड़नेवाली। पराम्बा सारे प्रपञ्च की साम्राज्ञी या महा-राज्ञी है। राजा के मन्त्री होते ही हैं। भगवती की 'मन्त्रिणी' श्रीश्यामला देवी हैं। इन्हीं को राज्य अर्थात् शासन-व्यवस्था का भार भगवती ने सौंप रखा है। देखें नाम ७५।

अथवा 'मन्त्रिणी' से प्रयत्न-विशेष का और 'राज्यधूः' से रूप के ऐक्य-रहस्य का बोध होता है। प्रयत्न-विशेष से मनन, त्राण व धर्मत्व का बोध होता है। संक्षेप में भगवती के पूर्ण रूप-रहस्य का ज्ञान अर्थात् वासनिक ज्ञान भगवती के मन्त्र अर्थात् सूक्ष्म रूप से ही होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जो माता श्री ललिताम्बा अपने भक्तों के स्मरण मात्र से, अपनी मन्त्रिणी श्यामलाम्बा पर सम्पूर्ण राज्य-भार रखकर, भक्तों को श्रेष्ठ वरदान देने हेतु उनके पास पहुँचती हैं, उन दयावती भक्त-वत्सला श्री ललिताम्बा को मैं सदा भजता रहूँ।

***

(७८७) श्रीत्रिपुरेशी

तीनों पुरों की स्वामिनी। इससे तात्पर्य है ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय रूपी त्रिपुर या त्रिपुटी की अधीश्वरी तुरीय महा-शक्ति का। स्थूल भाव में तीनों लोकों (स्वर्ग, पाताल, पृथ्वी) की ईश्वरी से बोध होता है। अथवा श्री-चक्र के 'सर्वाशापूरक-चक्र' की अधिष्ठात्री को 'त्रिपुरेशी' कहते हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! अपनी समस्त आशाओं को पूर्ण करने हेतु सर्वाशा-पूरक-चक्र की अधिष्ठात्री त्रिपुरेशी माता श्री ललिताम्बा को भजो, पूजो।

***

(७८८) श्रीजयत्-सेना

विजयी सेनावाली। 'सेना' से शक्ति-समूह का तात्पर्य है, जो तामसी और राजसी सर्गों का दमन करती है। भगवती की सेना में विद्याएँ हैं, जो अविद्या और उसकी सहकारी उपाधियों को जीतती हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको जयशीला सेना के रूप में ध्याता है, भजता है, उसके बाहरी व भीतरी सभी प्रकार के शत्रु शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं।

***

(७८९) श्रीनिस्त्रैगुण्या

त्रि-गुणातीता या त्रि-गुण-रहिता। इससे निर्गुण या निष्कल ब्रह्म का बोध होता है। अथवा त्रि-गुणों से परे महा-विद्या, जो वेदों में प्रतिपादित विद्या से भी श्रेष्ठ है। इसी से जगद्गुरु भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को यह उपदेश दिया है कि (गीता, २/४५)–

त्रैगुण्य-विषया वेदा, निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन!

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! सत्त्व, रजस् और तमस् — ये तीनों गुण आप में ही प्रकट हुए हैं। आपसे ही ये तीनों गुण बहिर्भूत हुए हैं। इन युक्त और अयुक्त गुणों को सब तरह से देखती हुई आप स्पष्ट ही निस्त्रैगुण्या हो। आपका यह नैपुण्य चातुर्य अतुल एवं अनुपम है।

***

(७९०) श्रीपरापरा

श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठा या परम श्रेष्ठा–'परात् परा।' 'पर' से भिन्न का और 'अपर' से अभिन्न का भी बोध होता है। इस भाव में आत्मा से भिन्नाभिन्न-रूपा है। अथवा 'पर' से दूर का तात्पर्य है। तदनुसार 'दूरादूर' या दूर भी है और अन्तः स्थित भी है। अथवा 'पर' का अर्थ है शत्रु। इससे भगवती न शत्रु है, न मित्र। 'गीता' भी कहती है–'ने मे द्वेषोऽस्ति न प्रियः।' अथवा 'पर' से पर-ब्रह्म या पर-विशेषण शत्रु और 'अपर' से पूर्व-विशेष्य शिव का बोध होता है। अथवा इससे 'परापर' ब्रह्म-द्वय का बोध होता है–'द्वे ब्रह्मणो वेदितव्ये, परं चापरमेव च।' (श्रुति)। अथवा द्विविधा 'वाक्-शक्ति' या अवस्था-द्वय का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! 'पर' और 'अपर' सभी स्वरूपोंवाली माता श्री ललिताम्बा को भजो और परापरत्त्व को जान लो।

***

(७९१) श्रीसत्य-ज्ञानान्द-रूपा

सत्य, ज्ञान और आनन्द-स्वरूपा। ये तीनों ब्रह्म की लक्षणाएँ हैं–'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म', 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इत्यादि (श्रुति)।

'सत्य' से सत्, 'ज्ञान' से चेतना या चित् और 'आनन्द' से स्फुरण का बोध होता है। इसी से 'सच्चिदानन्द ब्रह्म' कहते हैं।

अथवा इससे सद्-विद्या-विषय से अनभिज्ञों की अनानन्द-रूपा अर्थात् 'अनानन्द' या दुःख देनेवाली है-

'सती सद्-विद्या-विषये 'अज्ञा', अनभिज्ञा ये, तेषामनानन्दमानन्द-भिन्नं दुःखमेव रूपयति ददाति।'

इस भाव में उक्त नाम का पद-विच्छेद इस प्रकार है-सती+अज्ञ+अनानन्द-रूपा'।

'वृहदारण्यक' (श्रुति) भी कहता है कि जो अविद्या की उपासना करते हैं, वह अन्धकार में ही रहते हैं-**'अन्धं तमः प्रविशन्ति, येऽविद्यामुपासते।'**

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! गङ्गा में नहाने से और ध्यान से क्या होगा? दान और पिण्ड-प्रदान से क्या होगा? जप-जापों से क्या होगा? सत्य, ज्ञान और आनन्द-रूपिणी भवानी जगदम्बा श्री ललिताम्बा हृदय में प्रकाशित न होंगी, तो सब व्यर्थ ही है। अतः सत्य, ज्ञान व आनन्द-ब्रह्म-रूपा माता श्री ललिताम्बा को ध्याओ, भजो।

***

(७९२) श्रीसामरस्य-परायणा

तुल्य (समान) रस ही जिसके परम अर्थात् श्रेष्ठ रहने का स्थान है। इससे साम्यावस्था का बोध होता है। **साम्य** ५ प्रकार के हैं— **१. अधिष्ठान-साम्य, २. अवस्थान-साम्य, ३. अनुष्ठान-साम्य, ४. रूप-साम्य** और **५. नाम-साम्य।**

सामरस्य शक्ति की-**'साम्यं यातीति समयो वा समया'** अर्थात् साम्यावस्था में जो जाए अथवा दूसरों को भी ले जाए, उसे **'समय'** या **'समया'** कहते हैं। अथवा ऐक्य-भाव को **'सामरस्य'** कहते हैं, जिससे भगवती **अद्वैत-भाव-परायणा** है, ऐसा बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त कामेश्वर पर-शिव के साथ सामरस्य में लगी हुई आप षोडशी श्री ललिताम्बा को नित्य हृदय में निहारते हैं, वे राज-योगियों के श्रेष्ठ आनन्द को पाते हैं।

***

(७९३) श्रीकपर्दिनी

कौड़ीवाली अर्थात् **कौड़ी की माला** पहननेवाली। भगवान् शिव कौड़ी की माला पहनते हैं, इससे उनका एक नाम है **कपर्दी**। अथवा **'कपर्द'** का अर्थ है गङ्गा को पवित्र करनेवाला-

'कस्य गङ्गा-जलस्य पूरं प्रवाहं दापयति (दैप्-शोधने) शोधयतीति कपर्दः।'

अथवा 'कपर्दिनी' का अर्थ है महा-दरिद्र स्त्री। श्री महा-राज्ञी 'कपर्दिनी' है! पूर्ण विरुद्ध-वाक्य है। इसी से शास्त्रों में भगवती को 'विरुद्ध-वाक्यार्थ-शरीर-मण्डला' कहा है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! भक्त-गण जब तक बल से उछलते हुए शुम्भ-निशुम्भ को मर्दन करनेवाली आपकी शरण को प्राप्त नहीं करते हैं, तब तक उनका भव-भ्रम नहीं मिटता। जब भक्त-गण कौड़ियों की माला पहननेवाले शिव की सह-योगिनी आप महालसा के शरणागत होते हैं, तभी उनका आवागमन अवरुद्ध होता है।

***

(७९४) श्रीकला-माला

कलाओं की माला अर्थात् परम्परा-स्वरूपा। 'कला' से ६४ कलाओं का बोध होता है। जितनी कलाएँ हैं, सब भगवती में माला-रूप से सम्बद्ध हैं (गीता, ७/७)-

'मयि-सर्वमिदं प्रोतं, सूत्रे मणि-गणा इव'।

इससे स्पष्ट है कि सभी कलाएँ अर्थात् सृजन, रक्षण और संहरण-शक्तियाँ इसी पराम्बा भगवती से सम्बद्ध हैं अर्थात् इसी धर्मी शक्ति की धर्म-शक्तियाँ हैं। अथवा कलाओं की 'माला' अर्थात् शोभा लेनेवाली-'कलानां मां शोभां लाति गृह्णाति इति कला-माला।'

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! यदि प्रतिवादियों के समूहों को परास्त करना चाहते हो, तो चौंसठ कलाओं की माला पहननेवाली माता श्री ललिताम्बा की आवरण-परिवार-सहित पूजा करो।

***

(७९५) श्रीकाम-धुक्

मनोरथ की पूर्ति करनेवाली अथवा काम-धेनु-स्वरूपा। श्रुति भी कहती है कि-

'सा नो मन्द्रेष मूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु।'

भगवती ऐसी है कि इनका उपासक जो भी इच्छा करे, इनकी कृपा से प्राप्त कर सकता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जिन भक्तों के हृदय में कामधेनु-सी भगवती श्री ललिताम्बा निवास करती हैं, वे कभी किसी के दास नहीं रहते, न किसी से कभी याचना करते हैं, वे अच्छा स्निग्ध भोजन करते हैं और सदैव सुखी शान्त रहते हैं।

***

(७९६) श्रीकाम-रूपिणी

काम-स्वरूपा। 'काम' से तात्पर्य है पर-शिव या ब्रह्म का, जिसकी इच्छा (काम)-

'एकोऽहं बहु स्याम' या 'सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय'

सर्व-प्रथम प्रकट हुई। अथवा 'काम' से कामेश्वर का बोध होता है। इससे कामेश्वर-स्वरूपा अर्थात् **कामेश्वर से अभिन्न-रूपा** है। अथवा इच्छानुसार ही रूप अर्थात् शरीर हैं जिसके–

'यथैच्छं रूपाणि यस्याः।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आपकी विलसती हुई कला का मनोज्ञ-रूप कामदेव में प्रकाशित हो रहा है। आपका रूप कामदेव के भी चित्र को हरण करनेवाला है।

***

(७९७) श्रीकला-निधि

कलाओं का समूह या भाण्डार। '**कला**' के अनेक तात्पर्य हैं। '**कला**' आत्मा या जीव-वाचक भी है–'**आत्मैवास्यषोडशी कला**'(वृहदारण्यक)।

इस प्रकार **आत्मा या जीव-समूह-रूपा** का बोध होता है, जिससे **विश्व-रूपिणी** का तात्पर्य है। फिर '**कला-निधि**' चन्द्र-मण्डल को कहते हैं, जिससे तात्पर्य है **चन्द्र-मण्डल-रूपा**। '**शिव-सूत्र**'–'**योनि-वर्गः कला-शरीरं**' के अनुसार '**कला**' की व्याख्या कर्म-परत्व में की गई है। इस भाव में यह अर्थ है कि जिसमें कर्मों का निधान है–'**कर्माणि निधीयन्ते यस्याम्।**'

इस प्रकार इससे **ज्ञान या महा-विद्या** का तात्पर्य है । '**गीता**' भी कहती है–

'सर्व-कर्माखिलं पार्थ!, ज्ञाने परि-समाप्यते।'

अथवा **कला से धर्म-शक्ति** का भी बोध होता है। इस भाव में सब धर्म-शक्तियोंवाली अद्वितीया धर्मी शक्ति का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! चौंसठ कलाओं के प्रकारों का एक ही स्थान आप हो। काल-कर्मों के साथ सभी जीव आप प्रकृति में ही लीन होते हैं। इसलिए भी आप कला-निधि हो।

***

(७९८) श्रीकाव्य-कला

कवि के कर्म की कला अर्थात् प्रस्फुरण। इन प्रस्फुरणों के रूप हैं **नाटक, साटक, भाण, डिम, प्रहसन** इत्यादि अथवा काव्य की उत्पादिका प्रतिभा को भी '**काव्य-कला**' कहते हैं। इस भाव में विशिष्ट काव्य-स्फुरत्ता-स्वरूपा का बोध होता है। अथवा '**काव्य**' से **शुक्र** का बोध होता है। इस भाव में **शुक्र** की **मृत-सञ्जीवनी कला** या शक्ति (मन्त्र) स्वरूपा का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! काव्योत्पादक प्रतिभा को विकसित करने के लिए काव्य-कला-रूपा माता श्री ललिताम्बा का चिन्तन करो और नित्य नई काव्य-कला को प्राप्त करो।

***

(७९९) श्रीरसज्ञा

रसों को जाननेवाली। रस से शृङ्गार आदि दस रसों का तात्पर्य है। अथवा जिह्वा (रसनेन्द्रिय) स्वरूपा का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! रस-रूपी ब्रह्म को पूर्ण-रूपेण जाननेवाली माता श्री ललिताम्बा को भजो और प्रकृति-पुरुष के अद्वय ज्ञान-रूपी रस का पान करो।

***

(८००) श्रीरस-शेवधि

रसों की निधि। इससे सर्व-रस-स्वरूपा का बोध होता है। रस ब्रह्म है, जिसकी प्राप्ति से आनन्द होता है—

'रसो वै सः। रसं लब्ध्वा हि आनन्दी भवति' (श्रुति)।

रस से मुख्यतया शान्ति-रस का ही तात्पर्य है, न कि भयानक, रौद्र, वीभत्स आदि रसों का।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो आप जैसी रस-शेवधि को छोड़कर अन्य को पूजता-भजता है, वह कल्प-वृक्ष को छोड़कर कैर वृक्ष का आसरा लेता है।

***

(८०१) श्रीपुष्टा

पुष्टि-युक्ता। पुष्टि से आंशिक पुष्टि का नहीं, वरन् सर्वाङ्ग-पुष्टि का तात्पर्य है, जिससे उपचय-रूपा या वर्धन-शीला का बोध होता है। इससे यह तात्पर्य है कि भगवती छत्तीसों तत्त्वों से युक्त है अर्थात् सर्व-तत्त्व-पूर्णा है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! तीन गुण, छः ऐश्वर्य और छत्तीस तत्त्व हैं। इनसे परा प्रकृति निरन्तर पोषित रहती है। इस तथ्य को जाननेवाले ही आपको 'पुष्टा' समझ कर भजते, पूजते और ध्याते हैं।

***

(८०२) श्रीपुरातना

आद्या अर्थात् आदि-विग्रह-वती। इससे अनादि का बोध होता है, जिससे पुरातन अर्थात् पहले का और कोई नहीं है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! जगत् की मूल कारण माता श्री ललिताम्बा की भलीभाँति विवेचना करो और अपने अहंकार की अस्ति को समूल उखाड़ फेंको।

***

(८०३) श्रीपूज्या

पूजन-योग्या। पूजन से **परा-भावाश्रित**, **परा-पर-भावाश्रित** और **अपर-भावाश्रित** पूजनों का तात्पर्य है अर्थात् **अद्वैत**, **विशिष्टाद्वैत** और **द्वैत** भावों से पूज्या या प्रतीक्ष्या है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! देवों, राक्षसों, मानवों, सिद्धों, साध्यों से सदा पूज्या आपको कौन नहीं भजता है, सभी भजते हैं।

***

(८०४) श्रीपुष्करा

पोषण करनेवाली–'**पुष+करन् उणादि**।' इससे मुख्यतः पालन करनेवाली का तात्पर्य है। रकार और लकार में अभेद होने से '**पुष्कल**' का अर्थ बहुत है। बहुत से '**सर्व-व्याप्ता**' का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त पुष्कर पुण्य-तीर्थ पर आपकी जप-होम-तर्पण-पूजनादि से आराधना करते हैं, वे पुष्कर अर्थात् कमल के समान पवित्र, असंग एवं निर्मल हो जाते हैं।

***

(८०५) श्रीपुष्करेक्षणा

'**पुष्कर**' के अनेक अर्थ हैं–**आकाश**, **जल**, **कमल** इत्यादि। आकाश का ईक्षण या निरीक्षण करनेवाली से तात्पर्य है **परिच्छेद-रहित आकाश** को देखनेवाली अर्थात् **सर्व-व्यापिनी**। '**ईक्षण**' आँख को भी कहते हैं। अतएव '**पुष्करेक्षणा**' का अर्थ **कमलाक्षी** अर्थात् कमल-सदृश् आँखवाली भी है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त पुष्कर तीर्थ पर अथवा कमल पर स्थापित कर आपकी आराधना करते हैं, उन्हें इष्ट प्रदान करनेवाली पुष्कर-मालिनी लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती।

***

(८०६) श्रीपरं-ज्योति

उत्कृष्ट अर्थात् सर्व-श्रेष्ठ (**ब्रह्मात्मक**) ज्योति या प्रकाश। इससे उस ज्योति का बोध होता है, जिसकी ज्योति से **सूर्य**, **चन्द्र** और **अग्नि** भी प्रकाशित हैं–

'**येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः**' (श्रुति)।

इससे **आत्म-ज्योति** का बोध होता है। अथवा '**परं-ज्योति**' नामक **अष्टाक्षर-मन्त्र** का भी बोध होता है, जिसका उल्लेख '**दक्षिणामूर्ति-संहिता**' के पाँचवें पटल में है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप भगवती त्रिपुर-सुन्दरी के दर्शन करते हुए देव-गण इस संशय में पड़ जाते हैं — क्या यह चमकते हुए माणिक्यों का पर्वत है या ऊँचा प्रवाल-पुञ्ज एकत्र हुआ है। इस प्रकार जो देवों को सन्देह में डाल देता है, आपके उस लाल-लाल तेज की हम उपासना करते हैं।

***

(८०७) श्रीपरं-धाम

सबसे बड़ा (सर्व-श्रेष्ठ) स्थान या सर्व-श्रेष्ठ अवस्था। इसकी व्याख्या **भगवान् कृष्ण** ने '**गीता**' (१५/६) में की है–

न तद् भासयते सूर्यो, न शशाङ्को न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते, तद् धाम परमं मम।।

'**धाम**' शब्द पद-वाचक भी है। अतः इसे '**परं-पद**' भी कहते हैं। '**धाम**' ज्योति-वाचक भी है, परन्तु ऐसा अर्थ यहाँ करने से पुनरुक्ति का दोष होगा। अतएव अयुक्त है।

◆◆प्रार्थना◆◆

क्या यह सन्ध्या के रङ्ग में रङ्गा सुनहला बादल है? या लाल-लाल कान्तियों का मण्डप बना हुआ है? जिसे देखकर देव-गण ऐसा सन्देह करते हैं, वही परं-धाम-रूप उत्कृष्ट तेज मेरी दृष्टियों का मित्र बने।

***

(८०८) श्रीपरमाणु

छोटे-से-छोटा अणु, तद्-वत् रूपिणी। श्रुति भी कहती है–'**अणोरणीयान्।**'

इससे दुर्ज्ञेया का बोध होता है। अथवा अणु-नाम मन्त्र का है। इस भाव में **परम-श्रेष्ठ मन्त्र-स्वरूपा।**

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आपके चरण-कमल के जो छोटे-से-छोटे रज-कण हैं, उनसे ही ब्रह्मा-विष्णु-शिव-इन्द्र-वरुण आदि देव उद्भूत होते हैं। आपको हमारा बारम्बार प्रणाम है।

***

(८०९) श्रीपरात्परा

परा-भाव तुरीयावस्था का द्योतक है। इससे भी **परा** अर्थात् तुरीयातीता। (देखिए ७९० वें नाम '**परापरा**' की व्याख्या)।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! देवों में उत्कृष्ट देव ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं, उनसे भी अधिकाधिक उत्कर्षवाली माता श्री ललिताम्बा हैं। ऐसी 'परात्परा' भगवती की रात्रि-काल में पूजा करो और अपने हृदय की गाँठों को सदा के लिए खोल लो।

***

(८१०) श्रीपाश-हस्ता

हाथ में पाश रखनेवाली। भगवती के स्थूल ध्यान में बाँएँ निचले हाथ में पाश है, जो स्थूल रूप से अस्त्र का व्यञ्जक है, परन्तु '**पाश**' का वासनिक अर्थ है राग, जिसकी व्याख्या ८वें नाम में की गई है। '**पाश**' शब्द का वाच्यार्थ है '**पाश-बन्धने, पाशति बध्नाति शत्रून्**'–जिससे शत्रु बाँधा जाता है। शत्रु से तात्पर्य है **अविद्या** का। इस भाव में इस संज्ञा से '**महा-विद्या**' का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप घृणा, शङ्का, भय, लज्जा, जुगुप्सा, कुल, शील एवं जाति – सभी पाशों को हाथ से दूर कर देती हो और भक्तों को आशातीत वरदान देने को उद्यत रहती हो। आपके शङ्कर-विष्णु-ब्रह्मा-इन्द्रादि सभी देव दास हैं।

***

(८११) श्रीपाश-हन्त्री

बन्धन काटनेवाली। बन्धन से भव का तात्पर्य है। इस संज्ञा से यथार्थ **विशेष ज्ञान** का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! कामादि आठ पाशों, आणव-कायिक-मायिक त्रि-विध मल-रूपी पाशों एवं नाग-ब्रह्म आदि अस्त्र-विशेष पाशों को नष्ट कर देनेवाली पाश-हन्त्री परमेश्वरी के रूप में आपको जो भक्त दिन-रात स्मरण करता है, उसके कामादि सभी पाश स्वयमेव टूट जाते हैं।

***

(८१२) श्रीपर-मन्त्र-विभेदिनी

अपने उपासक के '**पर**' अर्थात् शत्रुओं के मन्त्र-प्रयोगों का निवारण करनेवाली।

अथवा '**पर**'-**मन्त्र** अर्थात् सर्वोत्कृष्ट मन्त्र (**पञ्चदशी**) का विभेदन अर्थात् विशेष रूप से भेदन अर्थात् भाग करनेवाली। **पञ्चदशी मन्त्र** के १२ भेद हैं। यथा– १. **मनु**, २. **चन्द्र**, ३. **कुबेर**, ४. **लोपामुद्रा**, ५. **मन्मथ**, ६. **अगस्त्य**, ७. **अग्नि**, ८. **सूर्य**, ९. **नन्दी**, १०. **स्कन्द**, ११. **शिव** और १२. **क्रोध-भट्टारक**। बारहों मन्त्र इन प्रधान उपासकों के उपासित भेद हैं।

अथवा 'पर' अर्थात् श्रेष्ठ मन्ता या मनन-कर्त्ताओं के 'अव' अर्थात् पाप का नाश करनेवाली है–

'पराः श्रेष्ठा ये मन्तारो, मनन-कर्त्तारस्तेषामवीन् पापानि भेदयति नाशयति।'

'अवि'-शब्द श्रुति के सिद्धान्त से पाप-वाचक है–

'अधि-शब्देन पापानि, कथ्यन्ते श्रुतिषु द्विजैः'।(लिङ्ग-पुराण)।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आप भवानी के पञ्चदशी मन्त्र को अनन्य हृदय से ध्याता है, उसके ऊपर खोटे मन्त्र-तन्त्र चेटक-टोटके आदि आक्रमण नहीं कर पाते हैं।

***

(८१३) श्रीमूर्ता

(८१४) श्रीअमूर्ता

साकार और निराकार-स्वरूपा। साकार से स्थूल और सूक्ष्म-द्वय-रूपिणी का और निराकारा से शुद्ध वासनिक स्वरूपा का बोध होता है। दोनों रूप नित्य हैं। निराकार की नित्यता में मत-भेद नहीं है। वह सर्व-सम्मत सिद्धान्त है। साकार की नित्यता में भेद है। साकार अर्थात् मूर्त्त को सोपाधिक कहकर अनित्य कहते हैं, परन्तु ऐसा कहनेवाले भूल करते हैं। मूर्त्त निरुपाधिक और सोपाधिक दोनों प्रकार के हैं। सोपाधिक तो अवश्य अनित्य हैं, परन्तु साथ ही निरुपाधिक मूर्त्त नित्य ही हैं–

'निरुपाधिक साकारस्य नित्यत्वं सिद्धमेव' (श्रुति)।

निरुपाधिक साकार भी तीन प्रकार के हैं–१. ब्रह्म-विद्या-साकार, २. आनन्द-साकार और ३. उभयात्मक-साकार। ये भी पुनः दो प्रकार के हैं–एक नित्य-साकार और दूसरा मुक्त-साकार। नित्य-साकार की लक्षणा है कि ये शाश्वत अर्थात् आदि और अन्त से रहित हैं–

'नित्य-साकारस्त्वाद्यन्त-शून्यः शाश्वतः'-(श्रुति)।

'मुक्त-साकार' की लक्षणा है कि उपासना करके जिन्होंने मुक्ति-साकारत्व प्राप्त किया है और जिनमें अखण्ड ज्ञान आ गया है। ये भी नित्य हैं। यह ऐच्छिक है, ऐसा कहा जाता है। अधिक क्या, श्रुति स्पष्ट शब्दों में कहती है कि ब्रह्म दो प्रकार के हैं–१. मूर्त्त और २. अमूर्त्त–

'द्वयेव ब्रह्मणो रूपं मूर्तं चामूर्तं च।'

इसी की पर्याय-वाचक संज्ञा 'क्षराक्षर ब्रह्म' है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश — ये पाँच महा-भूत आपके स्थूल रूप हैं। इन पञ्चीकृत स्थूल महा-भूतों से विद्वान् लोग आप निराकार आदि महेश्वरी को 'मूर्ता' मानते हुए ध्याते हैं और आपके गुणगान करते हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप सूक्ष्म से सूक्ष्म, अणु से भी अणु, बुद्धि-वाणी तथा मन के भी परे हो, इस कारण आप 'अमूर्ता' हो– मूर्ति रहित हो, फिर भी कवि लोग आपका वर्णन करते हैं।

***

(८१५) श्रीअनित्य-तृप्ता

इसका साधारण वाच्यार्थ '**नित्य-सन्तुष्टा**' है। इससे **परमावस्था** का बोध होता है। व्यष्टि-भाव से **पूर्ण ज्ञानावस्था** का बोधक है, जब कि अपरा-वासना के क्षय और परा-वासना की प्राप्ति से जीव **आत्माराम** हो जाता है। समष्टि-भाव में घनीभूता शक्ति की विकाशावस्था में इच्छा-शक्तियों की समाप्ति का द्योतक है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त मानस उपचारों से तथा यथा समय प्राप्त उपचारों से आपकी पूजा करते हैं, वे कल्पान्त तक तृप्त-प्रसन्न रहते हैं।

***

(८१६) श्रीमुनि-मानस-हंसिका

मुनियों के मानस-सरोवर की हंसी (हंस और हंसी सरोवर में ही रहते हैं) अथवा मुनियों के '**मान**' अर्थात् मान-विषय में '**स-हंसिका**' अर्थात् '**पाद-कटक**' (पैरों के एक प्रकार के आभूषण '**हंसक: पाद-कटक:**'–कोश) से युक्ता। तात्पर्य कि मुनियों के मान से सन्तुष्ट होकर नाचनेवाली अर्थात् अति प्रसन्न होनेवाली।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! यदि तुम कर्म-काण्ड करते-करते व्यग्र हो गए हो, शान्ति नहीं प्राप्त हो रही है, तो अन्तर्दृष्टि से मुनियों के मानस सरोवर की हंसी श्री ललिताम्बा को देखो-ध्यान करो।

***

(८१७) श्रीसत्य-व्रता

सत्य बोलने का व्रत जिसका है। '**व्रत**' शब्द का प्रयोग भक्ष्य-वाचक भी है, जैसा श्रुति में है '**पयो-व्रतं ब्राह्मणस्य**।' इस भाव में सत्य का भक्षण करनेवाली।

'**सत्य-भक्षणा**' से '**सत्य-प्रिया**' का बोध होता है अर्थात् सत्योक्ति-मात्र पालन-रूप व्रत से लभ्या है, ऐसा तात्पर्य है।

अथवा **अमोघ** (अचूक) **व्रत** जिसका है।

अथवा '**सत्य**' से शीघ्र फलद का तात्पर्य है। इस भाव में जिसके व्रत शीघ्र फल देनेवाले हैं, वह–'**सत्यानि शीघ्र-फलदानि व्रतानि यस्या:**।'

◆◆स्तुति◆◆

हे समस्त विश्व का धारण, पोषण करनेवाली सत्य-व्रता माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त व्रत, सत्य-पालन आदि के द्वारा गौरी तृतीया, नवरात्र आदि उत्सव करते हैं, वे सदा सुफल देनेवाले कल्पतरु-भाव को प्राप्त कर लेते हैं।

***

(८१८) श्रीसत्य-रूपा

नित्य-रूपा। सत्य से त्रिकालावाध्यत्व का बोध होता है। अथवा सत्य की संरक्षिका है–'सत्यं रूपयति या सा।'

अथवा सत्य से सत् का तात्पर्य है। इस भाव में सद्-रूपिणी अर्थ है। इससे ब्रह्म का बोध होता है, कारण सत्य ब्रह्म की एक संज्ञा है–'सत्यं शिवं सुन्दरम्।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आपका सत्य-रूपा नाम अत्यन्त भाव-गम्य है। आप त्रिकाल में भी अबाध्या अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्य काल में भी अटल रहनेवाली हो।

***

(८१९) श्रीसर्वान्तर्यामिणी

सभी के अन्तःकरण की नियामिका (ठेठ भाषा में सभी को नचानेवाली)। इससे अन्तरात्मका का बोध होता है। श्रुति भी कहती है–'एषोऽन्नतर्याम्येष योनिः सर्वस्य' (माण्डूक्योपनिषत्)। इससे सर्व-प्रतिष्ठा अर्थात् विश्व-रूपा का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप मनुष्यों में अन्तः-करण मन, बुद्धि आदि को नियमित करती हुई चेतना हो। आप हृदय-कमल में स्पन्दन करती हुई निरन्तर प्रकाशित होती हो। भक्त-गण आपको सब में रहती हुई समझ कर, अपने हृदय में धारण करते हैं और भजते-पूजते हैं।

***

(८२०) श्रीसती

पातिव्रत्य, सेवा, सद्-रूपत्व से 'सती' कहलाती है। अथवा इसे महा-देव की 'सती' नाम की पत्नी का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आपका सतीत्व लोक-विलक्षण, अनुपम एवं सनातन है। आपकी कृपा से हमें भी निरन्तर सत्य-मार्ग का दर्शन होवे।

***

(८२१) श्रीब्रह्माणी

ब्रह्मा की स्त्री अर्थात् तदभिन्ना शक्ति। अथवा ब्रह्मा की 'अणी' अर्थात् पुच्छ। इससे आनन्द-मय कोशस्थ पुच्छ-ब्रह्म-रूपा का बोध होता है। अथवा ब्रह्मा को जिलानेवाली अर्थात् पालन करनेवाली–'ब्रह्माणमानयति जीवयति।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! सभी लोकों को क्रीड़ा से उद्भावित करती हुई, हंस पर विराजमान, हाथों में कुम्भ, पुस्तक-माला और कमल लिए हुए आपको मैं संवित्-ज्ञान की प्राप्ति के लिए हृदय में चिन्तन करता हूँ।

***

(८२२) श्रीब्रह्मा

स्रष्टा अर्थात् विश्व को रचनेवाली।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप अणु-से-अणु, अर्थात् सूक्ष्म-से-सूक्ष्म हो और वृहत्-से-वृहत् अर्थात् बड़े-से-बड़ी हो। आप सभी जगत्, लोकों को बढ़ाती हो। इस प्रकार आप ही ब्रह्म हो।

***

(८२३) श्रीजननी

सृष्टि-कर्त्री अर्थात् सबकी माता। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-ये ही तीनों सर्व-प्रथम उत्पन्न हुए। श्रुति भी ऐसा कहती है–

देवी ह्येकाग्र आसीत्,…तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत्, विष्णुरजीजनत्, रुद्रोऽजीजनत्।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप ही में प्रसव-धर्म निर्णीत है। आप ही जनों को सुख-कर, सुख-मय और असुख-कर, दुःखद मार्गों से ले जाती हो। अतएव देव-गण आपको जननी कहते हैं।

***

(८२४) श्रीबहु-रूपा

अनेक-रूपा। इससे विश्व-रूपा का बोध होता है। 'बहु-रूपा' की शास्त्रोक्त परिभाषा–

विश्वं बहु-विधं ज्ञेयं, सा च सर्वत्र विद्यते।
तस्मात् सा बहु-रूपत्वाद्, बहु-रूपा शिवा मता।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! इस संसार में नर-नारी, बालक-बालिकाएँ, लता-वृक्ष-फल-पुष्प, जल-भूमि-अग्नि-वायु और आकाश सबको आपने व्याप्त कर रखा है। आप ही इस संसार में बहु-रूपा हो विजय पा रही हो।

***

(८२५) श्रीबुधार्चिता

ज्ञानियों से पूजिता। 'गीता' में भी भगवान् ने कहा है कि चार प्रकार के भक्त मेरी उपासना करते हैं—१. आर्त, २. जिज्ञासु, ३. अर्थ के चाहनेवाले और ४. ज्ञानी। इससे स्पष्ट है कि भगवती ज्ञान-यज्ञ अर्थात् परा-पूजा से ही विशेषतया प्रसन्न होती हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप ज्ञानियों द्वारा पूजी जाती हो। आपके चरण-कमलों में शरणागत होकर, जो एक बार भी आपका ध्यान करता है, उसे आप अपना सायुज्य पद देती हो, जिसके लिए इन्द्रादि देव भी इच्छा करते हैं।

***

(८२६) श्रीप्रसवित्री

प्रकृष्ट-रूप से (प्रपञ्च या विश्व की) जननी। 'सविता' शब्द का स्त्री-लिङ्ग 'सावित्री' है। सविता की परिभाषा 'विष्णु-धर्मोत्तर' में दी है—

'प्रजानां च प्रसवनात्, सवितेति निगद्यते।'

अथवा 'सविता' नाम सूर्य का है। इस भाव में सूर्य की प्रकाश-शक्ति का बोध होता है। 'प्र' के युक्त होने से प्रकृष्ट सूर्य या चित्-सूर्य का ही बोध है, न कि भूत सूर्य का।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! राजाओं के भवन-द्वारों को देखने की मुझे आकांक्षा नहीं है। धनियों के मुख भी मैं देखना नहीं चाहता। कुछ ज्ञान पाकर मद-मत्त हुए ज्ञानियों को भी मैं जीतना नहीं चाहता। मैं तो केवल यही चाहता हूँ कि समस्त कार्यों को प्रकट करने वाली आप प्रसवित्री का निवास मेरे हृदय में सदा बना रहे।

***

(८२७) श्रीप्रचण्डा

उत्कृष्ट चण्ड अर्थात् रुद्र जिसके दूत हैं। इसकी पर्याय-वाचक संज्ञा 'शिव-दूती' है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! दानवों को उग्र-दण्ड देनेवाली, क्षण-भर में लीला मात्र से दुष्ट भण्डासुर को

विनष्ट करनेवाली, महादेव की बुद्धि-रूपिणी भगवती ललिताम्बा को भजो और अपने शत्रुओं के खण्डन के लिए इधर-उधर मत भटको।

***

(८२८) श्रीआज्ञा

आदेश या निर्देश-रूपा। लिङ्ग-पुराण में है–

'पुरा ममाज्ञा मद्-वक्त्रात्, समुत्पन्ना सनातनी।'

अर्थात् आदि काल में मेरे मुख से सनातनी 'आज्ञा' उत्पन्न हुई।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त अशुभों से निवृत्त करनेवाली आप परात्परा महेश्वरी की आज्ञा को विनय-पूर्वक मानते हैं, पूजते हैं, उनकी आज्ञा के सभी वशीभूत होते हैं।

***

(८२९) श्रीप्रतिष्ठा

अस्तित्व की आधार-स्वरूपा। अस्तित्व से सर्व या विश्व-अस्तित्व का तात्पर्य है। श्रुति भी कहती है–'**विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा**।' तात्पर्य कि जिसमें अखिल विश्व है।

अथवा '**प्रतिष्ठा**' से '**प्रतिष्ठा**' नाम की कला का भी बोध होता है। शैवागमोक्त '**प्रतिष्ठा कला**' दूसरी है। इसकी लक्षणा है कि जो जीव में शिवानुराग अर्थात् शिव-भक्ति की स्थापना करे, वही **प्रतिष्ठा कला** है–

'शिव-रागानुरक्तात्मा, स्थाप्यते पौरुषे यथा। सा प्रतिष्ठा कला ज्ञेया····।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप जगत् की निधान हो। आप जल-तत्त्व-मय निष्ठा कला हो गुणों में वरिष्ठा हो। इष्ट-पूर्ति के लिए विद्वान गण आपकी शरण ग्रहण करते हैं।

***

(८३०) श्रीप्रकटाकृति

प्रकट-रूपा। अर्थात् जिसकी आकृति या रूप प्रकट है। इससे व्यक्ता प्रकृति का बोध होता है। अथवा प्रथमावरण-रूपिणी '**प्रकटा**' नाम की योगिनी, तद्-रूपा।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जब-जब दानवों के दम्भ के कारण सङ्घर्ष बढ़ता है, तब-तब देवों की प्रार्थना से प्रसन्न हो आप प्रकट होती हो और उग्र उपद्रवों का प्रशमन करती हो।

***

(८३१) श्रीप्राणेश्वरी

प्राणों की स्वामिनी। प्राण से श्रुति के मत से इन्द्रियों का भी बोध होता है। इस भाव में मन से तात्पर्य है, जिससे ब्रह्म का बोध होता है। ऐसा श्रुति कहती है–'**मनो ब्रह्मेति व्यजानात्**'–तैत्तिरीय।

अथवा पाञ्च-वृत्तिक प्राण की स्वामिनी। श्रुति भी कहती है–'**प्राणस्य प्राणः।**' अथवा प्रकृष्ट अर्थात् श्रेष्ठ '**अण**' अर्थात् शब्द अर्थात् महा-वाक्यों की ईश्वरी अर्थात् प्रतिपादिता देवता– '**प्र+अण+ईश्वरी।**'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! शरीर में इन्द्रियों और मन को प्रेरणा आप ही देती हो। आप प्राणेश्वरी को इस प्रकार मन-ही-मन विवेचना कर जो भक्त ध्याते हैं, भजते हैं, वे प्रबल और पवित्र प्राणवान् हो सर्वत्र विजय पाते हैं।

***

(८३२) श्रीप्राण-दात्री

प्राणों को देनेवाली अर्थात् जिलानेवाली। इससे सर्व-जगत् की जीवयित्री का बोध होता है। ऐसा श्रुति कहती है–'**प्राणो वै बलमिति**' (वृहदारण्यक, ५।१४।४)।

'**प्राण**' से मुख्य प्राण का बोध है, अन्यथा प्राणों की संख्या दश है–'**कतमासा देवता प्राण इति होवाच।**' (श्रुति)।

'**प्राण**' के संवेश-स्थानत्व के कारण से, जो ब्रह्म का ही गुण है, ब्रह्म का बोध होता है। ब्रह्म के प्राणाधिकरण से इसका स्पष्टीकरण होता है। इस भाव में ब्रह्म-धर्म-दायिनी अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान-दात्री का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको अपने हृदय में प्राणों को देनेवाली प्राण-दात्री के रूप में ध्याते हैं, भजते हैं, वे प्राण-तत्त्व को विशेष रूप से जाननेवाले हो जाते हैं।

***

(८३३) श्रीपञ्चाशत्-पीठ-रूपिणी

इसका शब्दार्थ **पचास पीठ** या स्थान-रूपिणी है, परन्तु ५० से ५१ का बोध होता है क्योंकि **प्रकृति की ५१ लक्षणाएँ** हैं। ५१ के स्थान में ५० ही लिखना शास्त्रों में प्रचलित है। पीठ-न्यास में ५१ पीठों का न्यास है–'**ततः पीठानि पञ्चाशदेकं च क्रमतो न्यसेत्।**' ५१ मातृकाओं के होने से ५१ पीठ या स्थान हैं। इसमें मतभेद है, परन्तु ५१ का सिद्धान्त ही युक्त है। इस संज्ञा से इक्यावनों मुख्य स्थानों की अभेद-स्वरूपा है, ऐसा बोध होता है। अथवा इन पीठों की अधिष्ठात्री देवता-स्वरूपा है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको इक्यावन पीठ-रूपिणी समझकर आपकी भक्ति-पूर्वक पूजा करता है, उसे इक्यावन पीठों पर पूजा करने का फल प्राप्त होता है।

***

(८३४) श्रीविशृङ्खला

कर्मादि-निर्बन्ध-रहिता। तात्पर्य कि जिसकी शृङ्खला अर्थात् विधि-निषेधात्मक सीमा नहीं है। इसका एक स्थूल अर्थ नग्ना भी है। ऐसी मूर्तियाँ अलंपुर आदि पीठों में स्थापित हैं। '**शृङ्खला**' से बन्धन का भी तात्पर्य है। इस भाव में **विशृङ्खला** से युक्ता का तात्पर्य है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जिन भक्तों के हृदय में आप लाल-लाल कान्ति बरसाती हुई प्रातः-कालीन सूर्य की प्रभा के समान उदित होती हो, वे शीघ्र ही शुभाशुभ कर्मों के बन्धनों से मुक्त होकर विशृङ्खल अर्थात् बन्धनों से रहित हो, सर्वोत्कर्ष को प्राप्त होते हैं।

***

(८३५) श्रीविविक्तस्था

विविक्त में रहनेवाली। '**विविक्त**' के दो अर्थ हैं—१. जन-शून्य और २. पवित्र—

'**विविक्तौ पूत-विजनौ**' (अमर-कोश)।

'**जन-शून्य**' से कैवल्य-भाव का और '**पवित्र**' से शुद्ध व अनुपहित भाव का बोध होता है। अथवा '**स-जन**' पवित्र-वाचक है और '**वि-जन**' अपवित्र-वाचक। इस प्रकार '**पवित्र**' और '**अपवित्र**' दोनों '**विविक्त**' हैं। इस भाव में **आत्माऽनात्म-विवेक-शील** भाव-द्वय का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप पवित्र, पुण्य-प्रद, एकान्त, सुन्दर, श्रेष्ठ स्थलों में नित्य विराजती हुई सम्पूर्ण विश्व का पालन करती हो। आपकी कृपा हम पर सदा बनी रहे।

***

(८३६) श्रीवीर-माता

वीरों की माता। '**वीर**' से धुरन्धर या प्रबल उपासक से तात्पर्य है। यहाँ '**वीर**' से वीरेश्वर नाम के गणेश्वर का बोध होता है। इस भाव में '**वीर-माता**' का पर्याय-वाचक पद गणेश-जननी है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको वीर-माता समझ कर भजते हैं, वे बलशाली, सफल, साहसी, गणों के अधिनायक तथा पूर्ण कलावान् हो जाते हैं।

***

(८३७) श्रीवियत्-प्रसूः

आकाश की सृष्टि-कर्त्री। इससे आत्मा अर्थात् परमात्मा का बोध होता है, कारण आत्मा ने ही आकाश की सृष्टि की है, जैसा श्रुति कहती है–'आत्मन आकाशः सम्भूतः।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! समूचा जगत् जिसमें प्रकाशित हो रहा है, उस आकाश को सर्व-प्रथम आप प्रकट करती हो। आप कैसे और कब इसे पैदा करती हो, यह आप ही हमें प्रबोध करा सकती हो।

***

(८३८) श्रीमुकुन्दा

मुक्ति देनेवाली। अथवा 'मुकुन्द' नाम विष्णु का है। इस भाव में तद्-रूपा है। 'तन्त्र-राज' भी कहता है कि पुं-रूपा (पुरुष-रूपा) होकर कृष्ण कहलाती है–'कदाचिदाद्या ललिता, पुं-रूपा कृष्ण-विग्रहा।' अथवा विश्व-कोश के अनुसार 'मुकुन्द' नाम का रत्न है। अतः तद्-रूपा है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! और-और देव तो पात्रानुसार भोग और मोक्ष अर्थात् भोग चाहनेवाले को भोग और मोक्ष चाहनेवाले को मोक्ष देते हैं परन्तु आप अपने शरणागत भक्तों को भोग और मोक्ष दोनों देती हो। इसलिए आप मु = मोक्ष, कु = भोग, दा = देने वाली 'मुकुन्दा' कहलाती हो।

***

(८३९) श्रीमुक्ति-निलया

मुक्तियों का समूह (आकार) या घर (भण्डार) जिसमें है या जो है। मुक्ति से पञ्च-विध मुक्तियों का बोध होता है। एक सिद्धान्त है कि मुक्ति चार ही प्रकार की है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको मुक्ति-निलया के रूप में ध्याते हैं, भजते हैं, वे शोक-रहित होकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं।

***

(८४०) श्रीमूल-विग्रह-रूपिणी

साकार ब्रह्म की आदि 'सूक्ष्म' और 'स्थूल'-द्वय स्वरूपा। दश महा-विद्या-रूपिणी महा-शक्तियों में आदि विग्रह-रूपिणी प्रपञ्चेश्वरी भगवती महा-त्रिपुर-सुन्दरी ही हैं क्योंकि आद्या या काली गुणातीता निष्कल-ब्रह्म-रूपिणी और द्वितीया श्रीतारा शब्द-ब्रह्म-स्वरूपिणी होने से एक प्रकार से निष्कल-स्वरूपिणी ही हैं। इस सिद्धान्त का समर्थन 'बाला-वगलादि-शक्तीनां मूल-भूतो यो राज-राजेश्वरी-विग्रहः, स एव रूपमस्याः'—(सौभाग्य-भास्कर व्याख्या) से होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको परा जगत् की आदि माता, परमेश्वरी जानकर आपको भजते हैं, वे अमृत पीनेवाले होते हैं और उन्हें भव से भय नहीं होता।

***

(८४१) श्रीभावज्ञा

भावों को जाननेवाली। तार्किक-सम्मत छः पदार्थों का '**भाव**' से बोध होता है। भाव '**भव**' के सम्बन्धियों को कहते हैं। '**भव**' नाम संसार का और '**शिव**' अर्थात् ब्रह्म का है। अतएव संसार-सम्बन्धी और **ब्रह्म-सम्बन्धी** भाव-द्वय का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! पर-शिव, कामेश्वर की प्राण-नाडी जो सभी भावों को जानती है, प्रकट करती है, उन भावज्ञा भवानी माता श्री ललिताम्बा के चरण-युगलों का शीघ्र ही आश्रय ग्रहण करो।

***

(८४२) श्रीभव-रोगघ्नी

सांसारिक तापों को दूर करनेवाली। इससे अनात्माकार-वृत्ति-छेदिका का बोध होता है। इसका लक्ष्यार्थ है यथार्थ **विशेष-ज्ञान-दात्री**।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! भव से क्या डरते हो। यदि भव-रोग मिटाना चाहते हो, तो जिसके हाथ में अमृत है, उन आदि-माता श्री ललिताम्बा की उपासना करो और आवागमन से मुक्त हो जाओ।

***

(८४३) श्रीभव-चक्र-प्रवर्त्तिनी

संसार-मण्डल को चक्र-वत् चलानेवाली। चक्र-वत् से तात्पर्य है क्रमानुगम जन्म-वृद्धि और क्षय का। अथवा '**भव-चक्र**' नाम है **अनाहत चक्र** का और **श्री-चक्र** का। अथवा '**भव-चक्र**' से शिव-चक्र अर्थात् मन का भी बोध होता है। अथवा इससे ब्रह्म में अथवा संसार में मन की प्रेरणा करनेवाली, ऐसा बोध होता है क्योंकि चक्र का एक अर्थ मन भी है-'**चक्रं हि मन एव।**' इस भाव में '**भव-चक्र**' से '**पर**' और '**अपर**' मन-द्वय का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! यदि सुख पाना चाहते हो, तो संसार-चक्र को प्रवृत्त करनेवाली, अथवा शिव के मन को परिवर्तित करनेवाली माता श्री ललिताम्बा का तर्पण करो।

***

(८४४) श्रीछन्दः-सारा

छन्दों की सार-स्वरूपा। छन्द से वेद–विशेषतया उपनिषदों का बोध होता है। इस भाव में छन्दों का सार अर्थात् निष्कर्ष ही जिसका विग्रह अर्थात् स्वरूप है, वह। इससे पञ्चदशी महा-मन्त्र स्वरूपा का बोध होता है। अथवा गायत्री छन्द-स्वरूपा का बोध है–'या गायत्री, सैव त्रिपुरा मता।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप समस्त श्रुतियों का सार-रूप हो। आप जगत् में अपने ज्ञान का सम्यक् प्रसार करती हो। आपको विद्वान् 'छन्दःसारा' नाम से भजते हैं, ध्याते हैं और स्थिर बुद्धि से पूजते हैं।

***

(८४५) श्रीशास्त्र-सारा

शास्त्रों की सार या निष्कर्ष-स्वरूपा। शास्त्र की भामती-परिभाषा है कि प्रवृत्ति या निवृत्ति-मार्ग में जिससे उपदिष्ट हो, वही शास्त्र है–

प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा, नित्येन कृतकेन वा। पुंसां येनोपदिश्येत, तच्छास्त्रमभिधीयत।

यहाँ 'शास्त्र' से तन्त्र-शास्त्र या मन्त्र-शास्त्र का ही तात्पर्य है। इस भाव का समर्थक अगला नाम 'मन्त्र-सारा' है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जो सभी शास्त्रों से वर्णित की जाती हैं, जिसमें सभी शास्त्र प्रकाशित होते हैं तथा शास्त्र ही जिसका स्वरूप है, उन शास्त्र की सार-रूपिणी माता श्री ललिताम्बा को हम प्रणाम करते हैं।

***

(८४६) श्रीमन्त्र-सारा

मन्त्रों की सार-स्वरूपा अर्थात् मनन करके जो निष्कर्ष मिलता है, तत्-स्वरूपा। मन्त्रों से वैदिक और तान्त्रिकी श्रुति दोनों प्रकारों के मन्त्रों का तात्पर्य है। 'मन्त्र-सार' का लक्ष्यार्थ है मन्त्र-रहस्य क्योंकि मनन से रहस्य-ज्ञान अर्थात् मन्त्रों के सूक्ष्मार्थ और परार्थ (वासनिक अर्थ) का बोध होता है। इस भाव में मन्त्र रहस्य-स्वरूपा है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! किसी भी देव का कोई भी मन्त्र क्यों न हो, वह आप शक्ति के बिना कुछ भी फल नहीं देता। अतः सभी लोग गुणों से उदार, मन्त्रों की सार-भूता आप श्री ललिताम्बा की आराधना करते हैं।

***

(८४७) श्रीतलोदरी

कृशोदरी अर्थात् जिसका पेट कृश अर्थात् सम है। इससे पीठ में सटे पेट का बोध नहीं है। इससे विराट्-रूपिणी का भी बोध होता है, जब कि अकार-प्रश्लेषण से अतल लोक का बोध होकर अतल लोक को पेट या गर्भ में रखनेवाली अर्थ है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जो विश्व का भरण-पोषण करनेवाली हैं, जो रूप-सुधा को बरसानेवाली हैं, जो गौर विमल और पतले उदरवाली हैं, वे श्रीसुन्दरी श्री ललिताम्बा मेरे चित्त में सदा प्रकाशित होती रहें।

***

(८४८) श्रीउदार-कीर्ति

बहुत बड़ी कीर्तिवाली। इस पद के विच्छेदानुसार अनेक तात्पर्य हैं। 'कीर्ति' शब्द के प्रधान अर्थ–शब्द, ज्योति, विकाश हैं। इन अर्थों में 'उदार' अर्थात् श्रेष्ठ शब्द-स्वरूपा, 'शब्द' अर्थात् परा-वाक्-स्वरूपा, 'ज्योति' अर्थात् परं-ज्योति-स्वरूपा और 'विकाश' अर्थात् पराऽऽकृति-स्वरूपा का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त संसार में उदार ऊँची कीर्ति की प्राप्ति के लिए, आपको भजते, पूजते, ध्याते हैं, उन्हें लोक में अवश्य ही शुद्ध उज्ज्वल अति उदार कीर्ति की प्राप्ति होती है।

***

(८४९) श्रीउद्दाम-वैभवा

सीमा-रहित (असीम) विभव अर्थात् अनवछिन्न विभववाली। 'विभव' के अनेक अर्थ हैं। यथा–सम्पत्ति, शक्ति और मुक्ति। इससे अनन्त शक्ति-शालिनी, अपरिमित श्री-मयी, कैवल्य-मुक्ति-स्वरूपा का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आपका वैभव निःसीम अर्थात् परिमाण से रहित है। आप निःसीम वैभववाली जिसको क्षण भर भी कृपा-दृष्टि से देखती हो, उसका वैभव भी अतुलित हो जाता है।

***

(८५०) श्रीवर्ण-रूपिणी

चौंसठ प्रकार के रूपवाली। पाणिनी-'शिक्षा' के अनुसार ६३ या ६४ वर्ण हैं–

'त्रि-षष्टिश्चतुः-षटिर्वा, वर्णाः शम्भु-मते मताः।'

६४ संख्या का तात्पर्य कलाओं से है। वर्ण की व्याख्या पूर्व हो चुकी है। वर्ण से मातृका-वर्ण का भी बोध होता है। तत् स्वरूपा।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिन अ-कार से क्ष-कार पर्यन्त वर्णों से मन्त्रादि, ग्रन्थादि बनते हैं, उन वर्णों की रूपिणी पराम्बा श्री ललिताम्बा हमारी सदा रक्षा करें और हमें सदा मार्ग दिखाएँ।

***

(८५१) श्रीजन्म-मृत्यु-जरा-तप्त-विश्रान्ति-दायिनी

'जन्म' से गर्भ-वास-दुःख, 'मृत्यु' से मरण-दुःख और 'जरा' से बुढ़ापे के दुःखों (शारीरिक और मानसिक) का बोध होता है। इनसे 'तप्त' अर्थात् दुःखी जनों अर्थात् जीवों को 'विश्रान्ति' अर्थात् छुटकारा अर्थात् स्वात्म-सुख की देनेवाली है। इससे जीवन-मुक्ति और विदेह-मुक्ति दोनों का बोध होता है। 'विश्रान्ति' अर्थात् 'विगत' या दूर हो गई है 'श्रान्ति' अर्थात् थकावट-ऐसी अवस्था।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! जन्म-मृत्यु-जरा से दुःखी जनों को स्वात्म-सुख देनेवाली माता श्री ललिताम्बा का आश्रय ग्रहण करो और सभी प्रकार की आकुलताओं से मुक्त हो जाओ।

***

(८५२) श्रीसर्वोपनिषद्घुष्टा

सब उपनिषदों द्वारा उत्कृष्ट रूप में प्रतिपादिता। उपनिषदों से वेदान्त अर्थात् वेदों के सिद्ध अन्तों (परिणामों) का तात्पर्य है। 'सर्व' से वैदिकी और तान्त्रिकी-दोनों श्रुतियों का बोध होता है ('मनु-स्मृति' के व्याख्याकार कुल्लुक भट्ट आदि आचार्यों के अनुसार)।

श्रुतियाँ शक्ति या शक्ति-ब्रह्म का ही प्रतिपादन करती हैं-'सर्वाः श्रुतयः शक्तावुपेताः'। 'ब्रह्म-सूत्र' के सर्वोपिताधिकरण का यही तात्पर्य है, जिसका स्पष्टीकरण-'सर्वोपेता च दर्शनात्' का शक्ति-भाष्य करता है। 'उत्' अर्थात् उच्च स्वर से, स्पष्ट-तया 'घुष्ट' अर्थात् घोषणा की गई है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जो देवों, ऋषियों, मनुष्यों से सेवित है, जो संसार के ताप से झुलसते प्राणियों को शान्ति प्रदान करती है, वह समस्त उपनिषदों से प्रतिपादित अम्बिका श्री ललिताम्बा मुझ पर प्रसन्न हो।

***

(८५३) श्रीशान्त्यतीत-कलात्मिका

आकाश-निष्ठा कला। इससे तुरीया और तुरीयातीता — दोनों का बोध होता है। सुषुप्ति को 'शान्ति' मानने से तुरीया का बोध है और तुरीया को 'शान्ति' मानने से तुरीयातीता का बोध होता

है। यदि ब्रह्म के तृतीय 'आनन्द'-पद को 'शान्ति' मानते हैं, तो तुरीय-पाद का ही 'शान्त्यतीता' से बोध होता है। शैवागम के अनुसार 'शान्त्यतीता'–कला निर्वाण के आनन्द की बोधक है–

'शान्त्यतीता कला द्वैत-निर्वाणानन्द-बोधदा।'

'कलात्मिका' को पृथक् संज्ञा मानने से सकल कला-स्वरूपा या कलाऽभिन्ना-स्वरूपिणी ऐसा अर्थ है और पूर्व-संज्ञा-युक्त करने से केवल 'शान्त्यतीता' कला की अभिन्न स्वरूपा है, ऐसा बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिसने समूचा गगन फैलाया है और जो वहीं रहती हुई उसे निश्चल धारण करती है, वह पवित्र शान्त्यतीत-कला-रूपिणी माता श्री ललिताम्बा मेरी निवृत्ति के लिए कृपा करे।

***

(८५४) श्रीगम्भीरा

गहरी। रहस्य-से-रहस्य अर्थात् रहस्याति-रहस्य स्वरूपवाली, जिसकी थाह कोई नहीं पा सकता। इससे अनन्ता या अपारा का बोध होता है। इसी कारण शास्त्रों ने भगवती की तुलना गम्भीर या महान् रुद्र से की है। 'शिव-सूत्र'–

'महा-ह्रदानुसन्धाना, मन्त्र-वीर्यानुभवा'।

पुनः शास्त्रोक्ति है–'महा-ह्रद इति प्रोक्ता, शक्तिर्भगवती परा।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आपके गुण-भेद, प्रभेद और उनके भी प्रस्तार से अनन्त भेद हो जाते हैं। अतः महान् गहरे ह्रद् की तरह आपको जो हृदय-कुहर में ध्याता है, वह विद्याओं के अन्तस्तल में प्रविष्ट हो सिद्धियों और कलाओं का भी भण्डार हो जाता है।

***

(८५५) श्रीगगनान्तस्था

गगन अर्थात् आकाश के अन्त में रहनेवाली। आकाश से दहराकाश या परमाकाश का बोध होता है। भगवती इनके भी परे हैं। इस नाम से पाँच वीजों का उद्धार होता है, यथा-'आ'-कार और अन्तस्था='य-र-ल-व'।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको दहराकाश, भूताकाश और पराकाश–तीनों आकाशों में रहनेवाली अणु-से-अणु और महती-से-महती विराट् रूपवती जानकर अन्तर में ध्याता है, वह शीघ्र-से-शीघ्र पाँचों भूतों पर प्रभुत्व कर लेता है।

***

(८५६) श्रीगर्विता

अभिमानिनी देवता। विश्व का निर्माण गर्व या अहङ्कार से ही है। इसको व्यष्टि-भाव में 'अहन्ता' और समष्टि-भाव में 'पराहन्ता' कहते हैं। इससे विश्वाभिमानिनी महा-शक्ति का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! अनेक ब्रह्माण्डों को आप एक निमेष में बना देती हो, आपकी अस्मिता से अति गर्वित हो, हम आपके अतिरिक्त सभी अन्य देवादि को आपके वैभव के आगे अति तुच्छ समझते हैं।

***

(८५७) श्रीगान-लोलुपा

गान सुनने की इच्छा रखनेवाली। 'गान' से गीत-लय का बोध होता है। शुद्ध गाने से भी समाधि लगती है अर्थात् मुक्ति होती है। 'गान' से हार्दिक आनन्दोच्छ्वास का तात्पर्य है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप कामेश्वरी का सविधि पूजन कर, जो भक्त नाना प्रकार के गायनों से वाद्यों के नाद-पूर्वक प्रसन्न करते हैं, वे सभी सम्पदाओं के स्थान बन जाते हैं।

***

(८५८) श्रीकल्पना-रहिता

वासनाओं से रिक्ता (खाली)। इससे सङ्कल्प और विकल्प-भावनाओं से रहिता अर्थात् शुद्ध-भावा का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप प्रलय-काल में भी प्राणियों के हित में लगी रहती हो। जो भक्त आपको हृदय से स्मरण करते हैं, उनके सभी कुतर्क शान्त हो जाते हैं। वे आप कल्पना-रहिता का सान्निध्य प्राप्त कर सभी प्रकार के कुतर्कों से मुक्त हो जाते हैं।

***

(८५९) श्रीकाष्ठा

अठारह निमेषात्मक समय-स्वरूपा। इससे काल के विभाजित अंश-स्वरूपा का बोध होता है। जिस प्रकार अनन्त-काल-स्वरूपा है, उसी प्रकार यह भगवती सीमित क्षुद्र काल-स्वरूपा भी है। अथवा वेदान्त के वाक्य के अर्थों के निष्कर्ष को भी 'काष्ठा' कहते हैं। श्रुति भी कहती है–

'सा काष्ठा सा परा गतिः।'

◆◆प्रार्थना◆◆

जो काल का मान-स्वरूपा है, जो वेद-वाक्यों की निष्ठा है, जो सर्व-परा गति है, जो समस्त विश्व का विस्तार करती है, वह काष्ठा-रूपिणी भगवती श्री ललिताम्बा मेरे तनु में प्रकाश करती रहें।

***

(८६०) श्रीअकान्ता

दुःख या पापों का नाश जिससे हो। '**अक**' पाप या दुःख को कहते हैं। इनके अन्त करनेवाली को '**अकान्ता**' कहते हैं–'**अक+अन्ता।**'

◆◆प्रार्थना◆◆

जो दृष्टि से प्रशान्ता है, जो भजन करनेवालों के दुःखों की नाशक हैं, जो कामेश की कान्ता हैं, जो उदर में अति ही कृश हैं, लाल-कमलों की शोभा जिसके हथेली में है, करुणा-रस जिसके अन्तःकरण में है, उन भगवती श्री ललिताम्बा को मैं सदा भजता रहूँ, ध्याता रहूँ।

***

(८६१) श्रीकान्तार्ध-विग्रहा

शिव की अर्द्धाङ्गिनी-स्वरूपा। '**कान्त**' नाम शिव का है। अथवा '**कान्त**' खकार को भी कहते हैं क्योंकि '**कान्त**' अर्थात् '**क**' के अन्त में '**ख**' है। '**ख**' से आकाश का बोध होता है। इस भाव में आकाश जिसका अर्ध (आधा) भाग या शरीर का आधा हिस्सा है, ऐसा बोध होता है। श्रुति भी कहती है–

'पादोऽस्य सर्वा भूतानि, त्रि-पादस्यामृतं दिवि।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आपको सर्वातिशायी अर्थात् संसार में सबसे अधिक सौन्दर्यवाली देखकर ही पर-शिव ने आपको कान्तार्द्ध-विग्रहा अर्थात् पति है आधा शरीर जिसका, ऐसा बनाया है।

***

(८६२) श्रीकार्य-कारण-निर्मुक्ता

जिसके न कार्य है, न कारण। '**कार्य**' से महत् आदि का और '**कारण**' से मूला प्रकृति का तात्पर्य है। श्रुति भी कहती है–'**न तस्य कार्य-कारणं विद्यतः।**' इससे अनुपहित या शुद्ध चेतना का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप शुद्ध चित्-स्वरूपा में न कोई कार्य है, न कोई कारण है। अतः जो भक्त आप 'कार्य-कारण-निर्मुक्ता' को भजते हैं, ध्याते हैं, उन्हें शुद्ध चित्-शक्ति की प्राप्ति होती है।

***

(८६३) श्रीकाम-केलि-तरङ्गिता

'**काम**' अर्थात् कामेश्वर शिव की '**केलि**' अर्थात् क्रीड़ा-विलासों के तरङ्ग अर्थात् प्रवाह जिससे होते हैं। तात्पर्य कि भगवती अनुपहित चेतना होती हुई भी उपहित चेतना-स्वरूपा भी है, जिससे '**काम**' या इच्छाओं की धारा प्रवाहित करती रहती है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको पर-शिव के साथ क्रीड़ा से तरङ्गिता ध्याता है, वह शीघ्र ही शिव हो जाता है और उसकी गिनती उपासक श्रेष्ठ में होती है।

***

(८६४) श्रीकनत्-कनक-ताटङ्का

'कनत्' अर्थात् दीप्यमान 'कनक' या सुवर्ण के 'ताटङ्क' (तड़का—एक प्रकार का कानों का आभूषण) जिसके हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! दीप्यमान सुवर्ण के कर्ण-भूषण से मधुर मनोहर मुखवाली कामेश्वरी माता श्री ललिताम्बा की कृपा प्राप्त करो और अपनी सभी कामनाओं को सफल करो।

***

(८६५) श्रीलीला-विग्रह-धारिणी

अनायास स्वरूप धारण करनेवाली। यहाँ 'विग्रह' से अवतारों का बोध होता है।

अथवा 'लीला' अर्थात् खेल के निमित्त विग्रह या स्थूल-रूप धारण करनेवाली। 'लीला' दो प्रकार की है–१. सूक्ष्म और २. स्थूल। सूक्ष्म 'लीला' में सूक्ष्म स्वरूप धारण करती है और स्थूल 'लीला' में स्थूल या पाञ्च-भौतिक रक्त-मांसवाला रूप धारण करती है।

अथवा ऐसा भी बोध है कि भगवती का किसी प्रकार का विग्रह धारण करना 'लीला'-मात्र है।

अथवा 'विग्रह' का अर्थ युद्ध भी है। इस भाव में ऐसा बोध होता है कि भगवती ने लीला के निमित्त ही भण्डासुर का बध किया है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त देवों की विपदाओं को दूर करनेवाले आपके उदार चरितों को गाते हुए आपका पूजन, भजन करते हैं, वे चिर-काल तक उच्च व श्रेष्ठ पदाधिकारियों से सेवित होते हैं।

***

(८६६) श्रीअजा

जिसका जन्म नहीं हुआ। जन्म-रहिता श्रुति भी कहती है–'अजामेका', 'न जातो न जनिष्यतः' इत्यादि। इससे अनादि परमा सत्ता का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आप सर्वादि-भूता को हृदय में ध्याते हैं, वे छहों विकारों से मुक्त हो जाते हैं।

***

(८६७) श्रीक्षय-विनिर्मुक्ता

'क्षय' अर्थात् मरण-रहिता। इससे नित्या-सत्ता का काल-परिच्छेद-रहिता होना बोध होता है। अथवा 'क्षय' से अपचय व ह्रास का भी बोध होता है। इस भाव में इसका ह्रास नहीं होता अर्थात् इसकी सत्ता कभी घटनेवाली नहीं है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको क्षय से रहित समझ कर ध्याते हैं और आपसे रोगादि के निवारण हेतु प्रार्थना करते हैं, वे रोग विशेष से तो मुक्त हो ही जाते हैं साथ ही आनन्द को भी पाते हैं।

***

(८६८) श्रीमुग्धा

सुन्दरी। मुग्ध के दो अर्थ है-१. सुन्दर और २. मूढ़--'मुग्धः सुन्दर मूढयोः' (विश्व कोष)। यहाँ सुन्दर ही उपयुक्त अर्थ है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपकी भक्ति-पूर्वक स्तुति करते हैं, उन पर आप प्रसन्न हो जाती हो और मुस्काते हुए करुण रस से सान्द्र-चित्त हो, उनके मनोरथों से भी उत्कृष्ट वर उन्हें क्षण भर में दे देती हो।

***

(८६९) श्रीक्षिप्र-प्रसादिनी

शीघ्र प्रसन्न होनेवाली। वैसे तो शीघ्र प्रसन्न होनेवाली इसके अन्य रूप (देवता) हैं, परन्तु आशु-तोष शिव एतद्-भिन्ना स्वयं महा-शक्ति-स्वरूपिणी है। क्षिप्र-प्रसादन गणेश इनके पुत्र भी हैं। क्यों न हों ? 'आत्मा वै जायते पुत्रः।' गणेश भी तो यही जगज्जननी हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त तनिक भी प्रणाम आदि से आपको प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं, उन पर आप माता के समान शीघ्र प्रसन्न होती हो। आपकी कृपा का कोई वर्णन नहीं कर सकता।

***

(८७०) श्रीअन्तर्मुख-समाराध्या

अन्तर्मुखी वृत्ति-वालों द्वारा ही ठीक से उपासिता या उपासना-योग्या हैं। अर्थात् अन्तर्यजन द्वारा ही सम्यक् प्रकार से भगवती की आराधना हो सकती है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! अन्तर्मुखी होकर अपने ध्यान-पथ में माता श्री ललिताम्बा को लाओ और शीघ्र-से-शीघ्र इष्ट फल को प्राप्त करो।

***

(८७१) श्रीबहिर्मुख-सुदुर्लभा

बहिर्मुखी वृत्ति-वालों को अति कठिनता से प्राप्य हैं अर्थात् बहिर्यजन से इन भगवती का ज्ञान बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है। 'सुदुर्लभा' अर्थात् अलभ्या हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो दुरात्मा है, जिनके आशय दूषित हैं, जो सदा कपट करते हैं, जिनमें तमो-गुण तरंगित है, जिनकी दृष्टि रजो-गुण से पूर्ण है, वे आपके चरण कमलों को न तो प्रणाम कर पाते हैं, न ही पूजन कर पाते हैं।

***

(८७२) श्रीत्रयी

त्रय (तीन) रूपा से वेद-त्रय अर्थात् ऋक्, यजु और साम-वेदों का तात्पर्य है (कोष)–

'स्त्रियामृक्-साम-यजुषी, इति वेदास्त्रयस्त्रयी।'

'देवी-पुराण' में भी यही परिभाषा है–

ऋग्-यजुः-साम-भागेन, साङ्ग-वेद-गता यतः।
त्रयीति पठ्यते लोके, दृष्टादृष्ट-प्रसाधिनी।।

'नित्या-तन्त्र' में इसका उद्धार भी है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आपका हृदय ऋग्-वेद है, मुख साम-वेद है और उदर यजुर्वेद है। इस प्रकार त्रय-मय त्रयी-रूपा होकर आप त्रि-लोक का विस्तार करती हो और दृष्ट व अदृष्ट बनकर सर्वत्र जय प्राप्त करती हो।

***

(८७३) श्रीत्रिवर्ग-निलया

धर्म, काम और अर्थ (पुरुषार्थ-त्रय) का स्थान जिसमें है। अथवा 'त्रिवर्ग' से प्रमातृ, प्रमाण, प्रमेय का भी बोध होता है अर्थात् इस त्रिपुटी का समावेश इसमें है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! धर्म, अर्थ और काम को त्रि-वर्ग कहते हैं। जो भक्त आप त्रि-वर्ग-निलया को अर्ध-रात्रि में हृदय में ध्याते हैं, उन्हें वेग से मोक्ष लक्ष्मी वर लेती हैं।

***

(८७४) श्रीत्रिस्था

तीन में रहनेवाली। 'त्रि' या तीन से तीनों कालों में, तीनों लोकों में, अभेद-रूप से तीनों गुणों में, तीनों ज्योतियों में, तीनों धर्मों में, तीनों रूपों (स्थूल, सूक्ष्म और पर) में, इत्यादि का तात्पर्य है। 'त्रि' से मात्रा-त्रय का भी बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! 'भूः-भुवः-स्वः' इन तीन लोकों में, 'दक्षिणाग्नि-गार्हपत्याग्नि-आहवनीयाग्नि' इन तीन अग्नियों, 'स्थूल-सूक्ष्म-विराट्' इन तीन भूतों, 'भूत-वर्तमान-भविष्य' इन तीन कालों, 'अ-ई-उ' इन तीन वर्णों में, 'सात्त्विकी-राजसी-तामसी' इन तीन वृत्तियों में, 'ब्रह्मा-विष्णु-महेश' इन तीन देवों में, 'प्रातः-मध्याह्न-सायं' इन तीन सन्ध्याओं में, 'ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत' इन तीन मात्राओं में, 'उदात्त-अनुदात्त-स्वरित' इन तीन स्वरों में तथा 'सत्त्व-रजस्-तमस्' इन तीन गुणों में आप ही प्रकाशित हो रही हो। अतः देव-गण, विद्वान् लोग आप हृदय-स्थिता को त्रिस्था भी कहते हैं।

***

(८७५) श्रीत्रिपुर-मालिनी

अन्तर्दशार-चक्र की अभिमानिनी देवता। भगवती तत्-स्वरूपा है।

◆◆प्रार्थना◆◆

श्री-यन्त्र के अन्तर्दशार चक्र में विराजमान, आपके सारूप्य समान रूपवाली, विपदाओं को विनष्ट करनेवाली भगवती त्रिपुर-मालिनी की हम वन्दना करते हैं।

***

(८७६) श्रीनिरामाया

रोग या व्याधि-रहिता। रोग या व्याधि से 'उपाधि' का बोध होता है। अथवा अव्याकृति या निर्विकारा का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! कमल पर विराजमान, चन्द्रमा की कला शेखर में लगाए हुए तथा कुसुम्भी रङ्ग का वस्त्र धारण करनेवाली माता श्री ललिताम्बा को हृदय में प्रकाशित करो और निर्भय होकर निरामय, निःरोग जियो।

***

(८७७) श्रीनिरालम्बा

अवलम्बन-रहिता या आधार-रहिता। 'निराधारा' इसकी पर्याय-वाचक संज्ञा है। यह स्वयं सर्वाधारा है। इसका आधार नहीं है, अथवा 'निरालम्ब' और 'सालम्ब' योग में से 'निरालम्ब'-योग-स्वरूपा है। अथवा निरालम्ब-पुरी में, जो समष्टि और व्यष्टि अर्थात् ब्रह्माण्ड और पिण्डाण्ड (जीव-शरीर) में है, रहनेवाली है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप समस्त ब्रह्माण्डों की एक आलम्बन-रूपा हो। आपका कोई दूसरा आलम्बन हो ही नहीं सकता। आप ही सर्वत्र निरालम्बा हो विजय पा

रही हो। आप निरालम्बा का हृदय में आलम्ब पाकर ही, श्री हरि निश्चिन्त होकर सुख से सोते हैं।

***

(८७८) श्रीस्वात्मा-रामा

अपनी ही आत्मा से (में) रमण करनेवाली। इससे ऐसा बोध होता है कि अपने को दो भागों में अर्थात् चित् और अचित् या शक्ति और शिव में विभाजित कर रमण करती है। रमण-धर्म ब्रह्म का है। इससे पर-ब्रह्म का ही बोध होता है–'रमणात् रामः।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको अपने हृदय में विलास करती हुई ध्याते हैं, वे स्वात्माराम हो सफल जन्मवाले व पूर्ण काम हो जाते हैं।

***

(८७९) श्रीसुधा-स्रुति

अमृत-धारा। ज्ञान-योग में इसकी पर्याय-वाचक संज्ञा है 'आनन्द-लहरी'। कुण्डली-योग में चन्द्र-मण्डल से गिरती सुधा-धारा का तात्पर्य है (इसकी विशद व्याख्या 'आनन्द-लहरी' पुस्तक में देखिए)।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जिन्होंने सुधा के झरने से समुज्ज्वल आपकी मूर्त्ति के दर्शन नहीं किए हैं, उनका देखना-न देखना बराबर है अर्थात् उनके नेत्र किसी काम के नहीं हैं।

***

(८८०) श्रीसंसार-पङ्क-निर्मग्न-समुद्धरण-पण्डिता

संसार-रूपी दल-दल में पूर्ण-रूप से (निःशेषतया) डूबे हुए का सम्यक् प्रकार से उद्धार करने में कुशल (चतुरा)। यह बहुत युक्त संज्ञा है। भगवती ने कृष्ण-रूप से 'गीता' में ऐसी घोषणा की है कि मेरे भक्त डूब नहीं सकते–'न मे भक्तः प्रणश्यति।'

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! संसार-रूपी कीचड़ में फँसे हुए मनुष्यों का उद्धार करनेवाली माता श्री ललिताम्बा की आराधना करो और निर्भय होकर संसार में रहो।

***

(८८१) श्रीयज्ञ-प्रिया

यज्ञ को पसन्द करनेवाली। अथवा 'यज्ञ' से विष्णु का बोध होता है, जैसा श्रुति कहती है– 'यज्ञो वै विष्णुः।' इस भाव में विष्णु-प्रिया या विष्णु-पत्नी का अभेद-रूप में बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आप यज्ञ-प्रिया को भजते हुए पूजा, बलि, तर्पण से प्रसन्न करते हैं, वे सुख-समृद्धि, भोग व मोक्ष प्राप्त करते हैं।

***

(८८२) श्रीयज्ञ-कर्त्री

यज्ञ करनेवाली। यज्ञ-कर्ता यजमानात्मक दीक्षित मूर्ति परम-शिव है। इसकी 'दीक्षा' नाम की शक्ति का 'यज्ञ-कर्त्री' से बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप युगादि काल में यज्ञ की उद्भावना करती हो, ब्रह्मा आदि देवों द्वारा यज्ञ करवाती हो तथा यज्ञ की सफलता में स्वतन्त्र रूप से फल देती हो। अतः विद्वान् लोग आपको यज्ञ-कर्त्री कहते हैं।

***

(८८३) श्रीयजमान-स्वरूपिणी

परम शिव-रूपा। यज्ञ-कर्त्री से भी इसका बोध होता है। आठों मूर्तियों में शिव की सर्व-श्रेष्ठा मूर्ति यजमान-मूर्ति है। इससे तत्-स्वरूपा का बोध होता है। अथवा 'यजमान' और 'स्व' उभय-रूपिणी है अर्थात् शिव-शक्ति-द्वय रूपा है। यजमान से आत्मा का बोध होता है—

'मूर्त्तिरष्टौ शिवस्याहुर्देव-देवस्य धीमतः।
आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिर्यजमानाह्वया परा।।'

इस भाव में शिव अर्थात् 'आत्मा' और 'स्व' अर्थात् 'परमात्मा' उभय-स्वरूपा है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको यजमान स्वरूपवाली समझकर आपका यजन-पूजन-भजन करते हैं, उनके सभी पूजन, अनुष्ठान निर्विघ्न सफल होते हैं।

***

(८८४) श्रीधर्माधारा

धर्म की निरर्गल प्रवाह (धारा) स्वरूपा—'धर्म+आ+धारा, आ समन्तात् सर्व-देशेषु'।

अथवा धर्म की आधार-स्वरूपा अर्थात् विश्व-धर्म या सामान्य-धर्म और विशेष धर्म की धरित्री। विश्व-धर्म तो एक है, परन्तु विशेष-धर्म तत्तद्देशीय, तत्तत् अवस्थाऽनुसार शिष्ट परम्परा-गत आगमोक्त क्रिया को कहते हैं।

अथवा इससे सर्व-प्रतिष्ठान-स्वरूपा है, ऐसा बोध होता है क्योंकि श्रुति कहती है—'धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्'।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको धर्म को धारण करनेवाली, विश्व की सार-भूता समझकर भजते हैं, वे जगत् को पावन करनेवाले हो प्रसिद्ध होते हैं।

***

(८८५) श्रीधनाध्यक्षा

धन की स्वामिनी। धन से सांसारिक और पारमार्थिक धन-द्वय का बोध होता है। इससे मोक्ष और भोग दोनों की देनेवाली है, ऐसा बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको यक्षों के अधिपति कुबेर से पूजी जाने वाली समझकर, बिल्व वृक्ष के त्रि-दल पत्रों पर 'श्रीं'-बीज लिखकर पूजते हैं, वे चिर-काल तक लक्ष्मीवान् होते हैं।

***

(८८६) श्रीधन-धान्य-विवर्धिनी

धन-सम्पत्ति और अन्न-सम्पत्ति को विशेष रूप से बढ़ानेवाली। शास्त्रों में धान्य या 'अन्न' की बड़ी महिमा है। 'अन्न' को ब्रह्म तक कहा गया है और 'धन' तो मूल वस्तु है ही। 'धन' से धर्म है, जिससे सुख या परम सुख की प्राप्ति होती है-'धनाद् धर्मं, ततः सुखम्।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको रात-दिन धन-धान्यों को बढ़ानेवाली, निश्छल दया-रस की समुद्र-रूपा समझकर आपका अर्चन करते हैं, उनकी सभी विपदाएँ दारिद्र्य को साथ ले उनके शत्रुओं के घरों में निवास करती हैं।

***

(८८७) श्रीविप्र-प्रिया

विद्वान् की प्रिया। वैसे 'विप्र' का अर्थ ब्राह्मण है, परन्तु शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार 'ब्राह्मण' से ब्राह्मण-कुलोत्पन्न, 'द्विज' से उपनयन-संस्कार-युक्त और 'विप्र' से विद्या-युक्त तथा तीनों से युक्त 'श्रोत्रिय' होते हैं-

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः, संस्काराद् द्विज उच्यते।
विद्यया याति विप्रत्वं, त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते।।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! गुरु-देव से प्राप्त विप्र-प्रिया के मन्त्र का आश्रय ग्रहण करो, उसे सतत जपो और आचरणवान् हो पृथ्वी को पवित्र करो।

***

(८८८) श्रीविप्र-रूपा

विद्वान् ब्राह्मण-स्वरूपा। यद्यपि भगवान् की उक्ति है कि '**अविद्या**' अर्थात् मूर्ख ब्राह्मण भी मेरा ही स्वरूप है–

'अविद्यो वा सविद्यो वा, ब्राह्मणो मामकी तनुः'।

तथापि '**ब्रह्म-वित्**' को ही ब्राह्मण कहते हैं–'**ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः**'। इस हेतु '**ब्रह्म-वित्**' को ही विद्वान् कहते हैं, जिससे '**विप्र**' और '**ब्राह्मण**' में अभेद है। '**अविद्या**' से पौस्तिकी विद्या-रहित का तात्पर्य है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको विप्र-रूप में ध्याते हैं, भक्ति-भाव से प्रणाम कर स्तुति करते हैं, उनके आगे सिद्धियों का सङ्घ नृत्य करता है अर्थात् उनके वश में सभी सिद्धियाँ हो जाती हैं।

***

(८८९) श्रीविश्व-भ्रमण-कारिणी

विश्व को भ्रमण करानेवाली। तात्पर्य कि ब्रह्माण्डों को सृष्टि-स्थिति-लय-रूपक चक्र-वत् घुमानेवाली। **गीतोक्ति भी है–'भ्रामयन् सर्व-भूतानि, यन्त्रारूढानि मायया'।**

अथवा 'विश्व**' शब्द विष्णु-वाचक है। इस भाव में विष्णु को भ्रमण करानेवाली कामाख्या भगवती** से तात्पर्य है, जिनकी कथा '**कालिका-पुराण**' में प्रसिद्ध है।

अथवा विश्व में भ्रमण या रमण करनेवाली है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको गुरु-मुख से विश्व-भ्रमण-कारिणी शक्ति जानकर भजता है, उसके सभी संसार के भ्रम दूर हो जाते हैं अथवा शान्त हो जाते हैं।

***

(८९०) श्रीविश्व-ग्रासा

चराचर की संहार-कर्त्री। 'ग्रस्' धातु का अर्थ व्यापन भी है। इस भाव में अर्थ है जगद्-व्यापिनी। इससे ब्रह्म का बोध होता है, जिससे ब्रह्म-सूत्र–'अत्ता चराचर-ग्रहणात्' सिद्ध करता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको विश्व को ग्रसनेवाली अथवा विश्व है एक ग्रास जिसका ऐसा जानकर ध्याता है, उसकी आज्ञा को यमराज भी शिर पर धारण करते हैं।

***

(८९१) श्रीविद्रुमाभा

विद्रुम (प्रवाल) की जैसी लाल वर्णवाली अथवा 'विद्रुम' का अर्थ है ज्ञान-वृक्ष-'वित् ज्ञानमेव द्रुमः'। इस भाव में ज्ञान-पुञ्ज-स्वरूपा है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! स्फुट मूँगे के समान कान्तिवाली, कान्ति-पुञ्जों को चारों ओर बरसाती हुई माता श्री ललिताम्बा को सन्ध्या समय ध्याओ, भजो और सभी के प्रिय बन जाओ।

***

(८९२) श्रीवैष्णवी

विष्णु-सम्बन्धी। विष्णु से ब्रह्म का बोध होता है-'व्यापनाद् विष्णुः' अर्थात् व्यापकत्व के कारण ब्रह्म 'विष्णु' कहलाता है। इस प्रकार ब्रह्म-सम्बन्धी से ब्रह्म-शक्ति या ब्रह्म-विद्या का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! भुवनों की ईश्वरी, विष्णु के हृदय कमल में विराजमान माता श्री ललिताम्बा का सदा भजन करो और याचकों के लिए कल्पतरु बन जाओ।

***

(८९३) श्रीविष्णु-रूपिणी

ब्रह्म-रूपिणी अर्थात् धर्मी-शक्ति-स्वरूपिणी। अथवा पालन-शक्ति-रूपिणी। अथवा विष्णु की जननी-'विष्णुं रूपयति करोति या।' इस भाव में विष्णु अर्थात् ज्ञान-शक्ति की उद्बोधिनी का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! प्रसिद्ध विष्णु भगवान् आपके ही रूप हैं। वैष्णव आपको ही ध्याते हैं। आप जगद्-योनि ही त्रिगुणा, अव्यक्त माया-रूप नारायण हैं।

***

(८९४) श्रीअयोनि

कारण-रहिता (जिसकी योनि अर्थात् कारण या मूल नहीं है)। 'योनि'-शब्द स्थान-वाचक भी है। इस भाव में सर्व-व्यापिका है। अथवा 'अ' का अर्थ है विष्णु। इस भाव में विष्णु की योनि अर्थात् जननी है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको विष्णु-जननी, अयोनि, कारण-रहिता, योनि-रहिता समझकर आपके चरण-कमलों को ध्याता है, वह फिर संसार में योनि को प्राप्त नहीं होता अर्थात् वह आवागमन से मुक्त हो जाता है।

***

(८९५) श्रीयोनि-निलया

ब्रह्म-निलया अर्थात् ब्रह्म-स्वरूपिणी क्योंकि 'योनि' से ब्रह्म-योनि का बोध होता है। अथवा प्रकृति-निलया क्योंकि 'योनि' से प्रकृति का भी तात्पर्य है। अथवा जब 'योनि' का अर्थ है माया, तब माया जिसकी परिच्छेदिका है, वहं । अथवा जिस योनि में विश्व का निलय हो, वह। अथवा योनियों अर्थात् देव-योनि, मनुष्य-योनि, तिर्यक्-योनि आदि का जिसमें नितरां लय हो, वह। अथवा 'योनि' अर्थात् त्रिकोण में जो रहती है, अर्थात विन्दु।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि देव जगत्-कारण होने से योनि-रूप हैं। ये सब प्रलय समय विलीन होते हैं। अतः विद्वान् लोग आपको 'योनि-निलया' कहते हैं और विविध उपचारों से पूजते हैं।

***

(८९६) श्रीकूटस्था

कूट अर्थात् गर्भ में रहनेवाली। इससे कूटस्थ ब्रह्म का बोध होता है।

अथवा 'कूट' का एक अर्थ विश्व-समूह भी है। इस भाव में तात्पर्य है विश्व-समूह की स्थिति जिसमें है वह।

अथवा 'कूट' का एक अर्थ रहस्य है। इस प्रकार रहस्य-मयी है।

अथवा 'कूट' से वाग्भवादि कूट-त्रय का बोध है, जिसमें कूट-त्रय-स्थिता से तात्पर्य है।

अथवा 'कूट' से पर्वत-शृङ्ग का बोध है, जिससे निष्क्रियता का तात्पर्य है अर्थात् भगवती निष्क्रिय ब्रह्म या द्रष्टा ब्रह्म है।

अथवा 'कूट' से माया का तात्पर्य है—'कूटयति छलयति या।' इस भाव में माया या प्रपञ्चस्था का बोध होता है।

'कूट' से श्रीचक्र के अन्तर्गत त्रिकोण का भी तात्पर्य है। इस भाव में इस त्रिकोण में रहती है।

अथवा अयस्कार के प्रहराधिकरणत्व से भूमि में गड़े लौह कील का बोध होता है। इस भाव में तद्-वत् निर्विकारा है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! विद्वान् लोग 'कूट' को अज्ञान कहते हैं। आप अज्ञान पर सदा आक्रमण करती हो। पर्वत के शिखर को 'कूट' कहते हैं, अतः आपकी स्थिति शिखर की तरह सबके ऊपर है। विश्व समूह को 'कूट' कहते हैं, अतएव उसकी स्थिति आप में है। माया को 'कूट' कहते हैं, माया आप से ही प्रकट होती है।

***

(८९७) श्रीकुल-रूपिणी

कुल-मार्ग-स्वरूपिणी। 'कुल' की व्याख्या पूर्व हो चुकी है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको कुल-रूपिणी समझ कर, दीक्षित हो आपका अर्चन करते हैं, वे सफल महा-विद्यावाले हो ब्रह्म-पद को प्राप्त करते हैं।

***

(८९८) श्रीवीर-गोष्ठी-प्रिया

वीर-मण्डल की प्रिया। वीरों के परस्पर संल्लाप अर्थात् परस्पर बोधन को पसन्द करनेवाली। गीतोक्ति भी है-'**परस्परं भावयन्तः, श्रेयः परमावाप्स्यथ।**'

'**वीर**' की परिभाषा है '**मच्चित्त**' और '**मद्-गत प्राण**।' अतः इनकी गोष्ठी से परस्पर **बोधन** का ही तात्पर्य है, जिसमें वीरों की तुष्टि है और इसी प्रकार के संल्लापों में वीर रमण करते हैं (गीता १०।८)-

'मच्चित्ता मद्-गत-प्राणा, वोधयन्तः परस्परं।
कथयन्तश्च मां नित्यं, तुष्यन्ति च रमन्ति च।'

'**वीर-गोष्ठी**' को **चक्र** कहते हैं, जिसमें **सामूहिक कर्मानुष्ठान** और **सामूहिक नाम-गुण-कीर्तन** होता है। साथ ही **सद्-विचार-विनिमय** भी होता है। इसी से भगवती ऐसी गोष्ठी को पसन्द करती हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो विधि-पूर्वक चक्रार्चन द्वारा, अपना मन्त्र जपता हुआ, वीरों के साथ पान-भोजन करता हुआ आपको प्रसन्न करता है, उसे देव भी प्रणाम करते हैं और उसके वाञ्छितों की सिद्धि उसे शीघ्र देते हैं।

***

(८९९) श्रीवीरा

वीर्य-वती अर्थात् शक्ति-मती। अथवा पुत्र-वती सधवा स्त्री की संज्ञा '**वीरा**' है-'**पति-पुत्र-वती वीरा**' (नाम-माला)। इसकी व्याख्या पूर्व हो चुकी है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको वीराचारों से, वीरोपकरणों से पर्व के दिन सन्तुष्ट करता है, वह मृत्यु को जीत लेता है और साक्षात् शिव के समान हो जाता है।

***

(९००) श्रीनैष्कर्म्या

निष्कर्म की भाव-स्वरूपा। कर्म जिसके निर्गत हो गए हैं, उसे '**निष्कर्मा**' कहते हैं। कर्म के निर्गमन से **कर्म-लोप** का तात्पर्य है अर्थात् **कर्म-फलों में अनासक्ति** (अनिच्छा) जिसकी हो गई है।

यह लक्ष्यार्थ है। यहाँ वाच्यार्थ उचित नहीं है क्योंकि 'निष्कर्मा' का वाच्यार्थ है, जो काम नहीं करते अथवा आलसी हैं, परन्तु कोई जीव अकर्मा या निष्कर्मा रह ही नहीं सकता। गीता (३।५) कहती है–

'नहि कश्चित् क्षणमपि, जातु तिष्ठत्यकर्म-कृत्।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको निष्कर्मा त्रिभुवन की अधीश्वरी समझकर, निष्काम भाव से ध्याता है, वह संसार में अभीष्ट फलों को पूर्णतया प्राप्त करता है।

***

(९०१) श्रीनाद-रूपिणी

शब्द या वाक्-रूपिणी। 'नाद' से अनाहत और आहत दोनों नादों का तात्पर्य है। भगवती परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी-स्वरूप नाद-रूपा है।

अथवा 'नाद' से प्रणव-शिर का तात्पर्य है। इस प्रकार तत्-स्वरूपा अर्थात् अर्ध-मात्रा-स्वरूपा है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! ब्रह्म-वाचक प्रणव ॐ-कार के शिर पर आप नाद-रूपिणी विराजती हो, तभी वह ब्रह्म-तत्त्व का बोध कराता है। बिना आपके 'प्रणव' ब्रह्म को बोधित नहीं करा सकता।

***

(९०२) श्रीविज्ञान-कला

ब्रह्म-ज्ञान का साक्षात्कार करानेवाली या उसे प्रत्यक्ष कर देनवाली। 'विज्ञान' अर्थात् विशेष ज्ञान ब्रह्म-ज्ञान ही है। 'कलन' से सृजन का भी बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे शिव की सह-चारिणी माता श्री ललिताम्बा! गुरु में दृढ़ भक्ति रखनेवाले, यम-नियम आदि का पूर्ण पालन करनेवाले भक्त के शान्त अन्तःकरण में आप विज्ञान-कलना -ब्रह्म-साक्षात्कार की कला अपने आप उदित होती है।

***

(९०३) श्रीकल्या

उषा-काल-स्वरूपा। उषा या प्रभात-काल का तात्पर्य है सृष्टि के आदि (प्रारम्भ) का समय, जिससे आद्या शक्ति का बोध होता है।

अथवा प्रभात से रात्रि अर्थात् अज्ञान का अन्त करनेवाले ज्ञान-रूपी 'कल्य' का तात्पर्य है। अथवा 'विश्व-कोश' के अनुसार 'कल्य' कल्याण का वाचक है। इस भाव में कल्याणी है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप सदैव आरोग्यवती हो और प्रपञ्च के विस्तार करने में चतुर हो। कलाओं में सर्व-श्रेष्ठा हो। कल्याण-क्रिया में भी आप श्रेष्ठा हो।

***

(९०४) श्रीविदग्धा

चतुरा। इससे प्रपञ्च-चतुरा का बोध होता है। इसी से भगवती 'प्रपञ्चेश्वरी' कही जाती हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको कर्मों के निर्मूल करने में विशेष चतुर के रूप में हृदय में धारण करते हैं, उनके संचित-प्रारब्ध-क्रियमाण तीनों कर्म अंकुरित होने की अक्षमता को प्राप्त हो जाते हैं। उनके कर्म पुनः उग नहीं पाते।

***

(९०५) श्रीवैन्द-वासिनी

विन्दु में प्रतिष्ठिता (जिसका आसन विन्दु-सम्बन्धी है)। विन्दु अर्थात् विन्दु-व्यूह से घनीभूता अप्रसारित (संकुचित) शक्ति-पुञ्ज का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! भृकुटी के बीचों-बीच बिन्दु में विलास करनेवाली माता श्री ललिताम्बा को ध्याओ, भजो और स्थिरता को प्राप्त हो जाओ।

***

(९०६) श्रीतत्त्वाधिका

तत्त्वों से परे अर्थात् तत्त्वातीता। इससे निर्गुणात्मिका-शिव-तत्त्व से भी परे-अनाख्या चिन्मयी महा-शक्ति का बोध होता है। अथवा स्वयं-प्रज्ञात समाधि का बोध है (ज्ञानार्णव तन्त्र)-

'स्वयं प्रज्ञात-संज्ञस्तु, शिवाधिक्येन जायते'।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! प्रलय काल में जब सभी ३६ तत्त्वों का विलय हो जाता है, तब आप एक ही शेष रह जाती हो। अतएव तत्त्व-ज्ञानी लोग आपको तत्त्वाधिका अर्थात् ३६ तत्त्वों से अधिक मानते हैं।

***

(९०७) श्रीतत्त्व-मयी

तत्त्व-स्वरूपिणी। शाक्त और शैव दर्शनोक्त ३६ तत्त्व हैं। इनकी स्वरूपिणी अर्थात् 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! शिव से भूमि पर्यन्त रस ६ और अक्षि ३ वाम क्रम से जोड़ने पर ३६ छत्तीस होते हैं। जो भक्त इस भावना से आपको ध्याते हैं, वे आत्म-विद्या, शिव-तत्त्व के ज्ञाता हो जाते हैं।

***

(९०८) श्रीतत्त्वमर्थ-स्वरूपिणी

'तत्, त्वम्' महा-वाक्य के अर्थ अर्थात् निष्कर्ष स्वरूपवाली। इससे 'तत्' और 'त्वम्' दोनों पदों के अर्थ अर्थात् शिव और जीव दोनों के रूपवाली है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! 'तत्' अर्थात् शिव-परमात्मा-ब्रह्म और 'त्वम्' अर्थात् जीव-ये दोनों स्वरूपवाली माता श्री ललिताम्बा को भजो और शीघ्र ही 'तत्' पद के लक्ष्य ब्रह्म, शिव को प्राप्त हो जाओ।

***

(९०९) श्रीसाम-गान-प्रिया

साम-वेद के गान को पसन्द करनेवाली। 'साम' से छन्दों का तात्पर्य है। अथवा 'सामगा' अर्थात् साम-गान करनेवालों को प्राण-वत् पसन्द करनेवाली-'सामगश्छन्दोगाः अन-वत् प्राण-वत् प्रिया यस्याः, सामग+अन+प्रिया।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप साम-गान-प्रिया हो। जो भक्त आपको साम-वेद की स्तुतियों से प्रसन्न करता है, उसे आप शीघ्र प्रसन्न होकर वैभव प्रदान करती हो।

***

(९१०) श्रीसौम्या

प्रशान्ता। यह नाम सोम-शब्द से बना है। सोम का अर्थ है, जो अमृत को उत्पन्न करे-'अमृतं सूते इति सोमः।'

अमृत आनन्द-दाता है। इसी से 'सौम्य' का अर्थ सुन्दर भी है। भगवती 'सौम्या' अर्थात् सुन्दरी है, साथ ही सौम्य-तरा है। यही नहीं, सभी सौम्यों अर्थात् अपने सभी सुन्दर स्वरूपों से भी अधिक सुन्दरी है। 'सप्तशती' के प्रथम अध्याय में ऐसा ही प्रतिपादित है। साकार ब्रह्म के सौम्य अर्थात् शान्त और असौम्य अर्थात् घोर या क्रूर दो प्रकार के रूप हैं। जहाँ भगवती काली और तारा के दोनों प्रकार के रूप हैं, वहाँ भगवती षोडशी का केवल 'सौम्य'-रूप ही है। भगवती स्वर्ग भी देती है, जिसे आह्लाद की पराकाष्ठा कहते हैं।

अथवा सोम-याग की योग्या को भी 'सौम्या' कहते हैं-'सोम-यागार्हा सौम्या।'

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! कपूर, चन्द्र, दुग्ध, शङ्ख, कुन्द और हिम-खण्ड के समान गौर, आह्लाद-कारिणी, रुचिकर, मनोहर, कोमल, उजली, शान्त, ठण्डी किरणवाली सौम्या मूर्ति माता श्री ललिताम्बा को ध्याओ, भजो और विपुल ऐश्वर्य को प्राप्त करो।

***

(९११) श्रीसदा-शिव-कुटुम्बिनी

सदा-शिव की स्त्री। इससे श्यामला आदि-रूपिणी का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! करुण रस से सान्द्र, संसार-समुद्र में डूबते हुए जीवों का एक-मात्र सहारा, सदा-शिव की कुटुम्बिनी माता श्री ललिताम्बा को ध्याओ, भजो और स्वतन्त्र रूप से सुख प्राप्त करो।

***

(९१२) श्रीसव्यापसव्य-मार्गस्था

दक्षिण, वाम और मिश्र–तीनों मार्गों में जिसकी स्थिति है। 'सव्य' (देव-मार्ग) निवृत्ति-परक है और 'अपसव्य' (पितृ-यान) धूम्रादि प्रवृत्ति-परक है। तीसरा 'मिश्र' है। इन्हीं तीनों को पारानन्द ने दक्षिण, वाम और उत्तर कहा है–'पारानन्दे मते त्रयो मार्गा–दक्षिणः, वामः, उत्तरः'—सूत्र ३३।

ज्योतिर्विद्या के मत से सवितृ-मण्डल के उत्तर, दक्षिण और मध्य—ये तीन मार्ग हैं, जिनकी व्याख्या 'वायु-पुराण' में है। इससे यह भी बोध होता है कि षोडशी भगवती वामाचार, दक्षिणाचार और मिश्र आचार से प्राप्या हैं।

अथवा इन तीनों से चान्द्र-मार्ग, सौर मार्ग और अग्नि-मार्ग अर्थात् सूर्य-द्वार, चन्द्र-द्वार और आग्नेय मार्ग-त्रय का भी तात्पर्य है (विशेष जानकारी हेतु 'छान्दोग्योपनिषत्' ५/१० देखिए)।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! दिव्य भाव-मयी त्रिपुर-सुन्दरी श्री ललिताम्बा को दक्षिण, वाम किसी भी मार्ग से ध्याओ, पूजो और सिद्धि को प्राप्त करो।

***

(९१३) श्रीसर्वापद्-विनिवारिणी

सब प्रकार की आपदाओं को विशेष प्रकार से निःशेष रूप में हटानेवाली।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! अनेक प्रकार की आपदाओं के भेदन के लिए पृथक्-पृथक् देवों की याचनाएँ न कर एक मुख्य श्री ललिताम्बा का स्मरण करो, जो सभी आपदाओं का निवारण करनेवाली हैं।

***

(९१४) श्रीस्वस्था

अपने ही में स्थिता। श्रुति कहती है कि ब्रह्म-स्वरूपा अपनी ही महिमा में है–

'स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नीति होवाच।'

अथवा स्वर्ग में स्थित है, कारण '**स्वः**' नाम स्वर्ग का है।

अथवा **सु+अस्था=स्वस्था** का अर्थ है वह, जिसकी '**अस्था**' अर्थात् स्थित्य-भाव '**सु**' अर्थात् सुन्दर है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त ध्यान-योग से अपने आप में आपके मन्त्र को जपते हैं, वे सर्व-तन्त्र स्वतन्त्र हो, काल-जयी हो जाते हैं।

***

(९१५) श्रीस्वभाव-मधुरा

जिसका स्वभाव या प्रकृति मधुर अर्थात् अभिलषणीय है। '**स्वभाव**' का अर्थ है निजी भाव अर्थात् धर्म या गुण। इससे '**मधुरा**' पुरी का भी बोध होता है अर्थात् जिसमें मधुर '**स्व**'=आत्मीय, '**भाव**'=अवस्थान है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त शुभ्रांशु चन्द्रमा की निर्मल उज्ज्वल कला, गौर प्रभावाली सुधा की धारा के समान आप श्री ललिताम्बा महा-राज्ञी का आश्रय करते हैं, वे तीनों प्रकार के तापों, ज्वरों से मुक्त हो जाते हैं और उनके वैरियों में ये उदित हो जाते हैं।

***

(९१६) श्रीधीरा

पण्डिता अथवा धैर्य-वती। अथवा 'धी' अर्थात् बुद्धि या अद्वैत ज्ञान को देनेवाली—'धियमद्वैत-ज्ञानं राति ददाति या।' अद्वैत बुद्धि इसी की दया से मिलती है—'ददामि बुद्धि-योगं तं, येन मामुपयान्ति ते।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप भक्तों पर कृपा कर भक्तों को स्वयं बुद्धि प्रदान करती हो। आप परा उत्कर्षवाली धैर्य की एक आधार हो। आप सभी प्रकार के शोकों को दूर करती हो।

***

(९१७) श्रीधीर-समर्चिता

पण्डितों अर्थात् ज्ञानियों से सम्यक् प्रकार से पूजिता। 'धीर' से वीर का तात्पर्य है। 'धीर' अर्थात् ज्ञानी (वीर) के सिवा अन्य कोई इसका ज्ञान नहीं रखते, जिससे सम्यक् प्रकार से इसका अर्चन अर्थात् अनुसन्धान या ज्ञान नहीं कर पाते। गीतोक्ति है—

'विमूढा नानुपश्यन्ति, पश्यन्ति ज्ञान-चक्षुषः।'

श्रुति भी कहती है—'परि-पश्यन्ति धीराः', पुनः 'तयाऽऽत्मस्थं ये अनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।'

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! संसार में आनन्द-प्राप्ति के लिए पण्डितों के मण्डल-के-मण्डल द्वारा पूजित माता श्री ललिताम्बा को पूजो। माता श्री ललिताम्बा का सच्चा नाम मङ्गल के लिए सदा तुम्हें स्मरण रहे, यही प्रार्थना करते रहो।

***

(९१८) श्रीचैतन्यार्घ्य-समाराध्या

चेतना-रूपी अर्घ्य से सम्यक् प्रकार से आराधन-योग्या। 'चैतन्य' ज्ञान-वाचक पद है और 'अर्घ्य' भी ज्ञानार्थक है—'ज्ञानमर्घ्यम्', परन्तु जहाँ 'अर्घ्य' से सामान्य ज्ञान का भी बोध होता है, वहाँ 'चैतन्य' से विशिष्ट ज्ञान का ही बोध होता है। अतः इस नाम का यह भाव है कि भगवती विशेष यथार्थ ज्ञान से समाराध्या है। तात्पर्य यह है कि 'मैं चिद्-रूप ज्ञेय-स्वरूपाऽभेद हूँ', ऐसा जान करके ही सम्यक् प्रकार की आराधना अर्थात् अनुसन्धान करना उचित है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त अपने प्राणों को अर्घ्य की तरह आपके के श्री-चरणों में अर्पित करते हैं, उन्हें आपके प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त होते हैं।

***

(९१९) श्रीचैतन्य-कुसुम-प्रिया

चैतन्य-रूपी पुष्प को पसन्द करनेवाली। पुष्प—भाव व चित्त-वृत्ति के द्योतक हैं। इसी से तन्त्र-शास्त्र में अहिंसा, शान्ति, दया, ज्ञान, तप, सत्य आदि पुष्प (मन-रूपी वृक्ष के) कहे हैं। देखिए, हिन्दी 'महा-निर्वाण तन्त्र', पृ० २८-२९। वास्तविक पूजा इन्हीं पुष्पों से होती है। इस प्रकार भगवती यथार्थ ज्ञान की प्रिया हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको पञ्चमी रस से तर्पण करता हुआ सेवन-पूजन-भजन करता है, वह संसार में सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।

***

(९२०) श्रीसदोदिता

सर्वदा प्रकाशमाना। परं-ज्योति-स्वरूपिणी। भगवती सदा उदय-वती हैं, जिनका प्रकाश कभी अस्त या तिरोहित ही नहीं होता। अथवा 'सत्' अर्थात् सज्जनों में अतिशय 'उदिता' हैं— 'सत्+आ=उदिता।' तात्पर्य यह कि सत्पुरुषों में विशेष मात्रा ('आ'-समन्तात्)में प्रकट रहनेवाली हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप अपने भक्तों के हृदय-रूप उदयाचल पर सदा उदित होकर स्वतः प्रकाशवती हो। आपके इस स्वरूप को जो भक्त ध्याते हैं, उनके अज्ञान-रूप अन्धकार का पूर्णतया नाश हो जाता है।

***

(९२१) श्रीसदा तुष्टा

नित्य-तृप्ता। इसकी व्याख्या ५५६ वें नाम में देखें। अथवा सज्जनों से अतिशय तुष्टा या प्रसन्ना

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आपके सुन्दर चरण-कमलों को खिले पुष्पों से पूजते हुए, सुषुम्णा नाड़ी में नाभि से कण्ठ तक ऊपर की ओर आपके मन्त्र को जो भक्त देखते हैं, वे सदा तुष्टा रूप अमृत को पीते हैं।

***

(९२२) श्रीतरुणादित्य-पाटला

मध्याह्न-कालिक सूर्य के समान मिश्र श्वेत-रक्ता। 'पाटला' की व्याख्या हो चुकी है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! यदि बड़े-से-बड़े को वशीभूत करना चाहते हो, तो मध्याह्न सूर्य के समान तेज और श्वेत-रक्त वर्णवाली महा-माया श्री ललिताम्बा को पूजो।

***

(९२३) श्रीदक्षिणादक्षिणाराध्या

'दक्षिण' और 'अदक्षिण' अर्थात् वाम-क्रम-दोनों से आराधन-योग्या। 'तन्त्र' का आदेश भी है (शक्ति-सङ्गम)-

'बालायामुभयाचारः, श्रीविद्यायां तथैव च'।

अथवा 'दक्षिण' से पण्डित और 'अदक्षिण' से मूर्ख का तात्पर्य है। इस प्रकार भगवती दोनों प्रकार के उपासकों अर्थात् सभी की उपास्या है।

अथवा 'दक्षिण' से केवल कर्म-फलेच्छा रखनेवालों का और 'अदक्षिण' से मुमुक्षुओं का तात्पर्य है। इसी अर्थ के अनुसार 'श्रुति' में कहा है-

'न तत्र दक्षिणा यान्ति, नाविद्वांसस्तपस्विनः'।

अर्थात् दक्षिणाचारी वहाँ (ब्रह्म तक) नहीं जा सकते।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप दक्षिण और अदक्षिण दोनों से आराधित हो। भक्त-गण किसी भी मार्ग से आपको पूज सकते हैं। आप सभी मार्गों से प्राप्य हो।

***

(९२४) श्रीदर-स्मेर-मुखाम्बुजा

मन्द मुस्कान से युक्त मुख-कमलवाली। अथवा 'दर' का अर्थ भय होने पर निर्भया का बोध होता है-'दरे भय-कालेऽपि स्मेरमेव मुखाम्बुजं यस्याः सा।'

अथवा 'दर'=आदर। इस भाव में भक्तों को आदर करते समय अथवा आदर के विषय में भगवती का मुख-मण्डल प्रसन्न हो उठता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आप तनिक हास-युक्त मुख-कमलवाली को ध्याते हैं, उनके सुषुम्णा-स्थित सभी ज्ञान-केन्द्र स्वतः जागृत हो जाते हैं।

***

(९२५) श्रीकौलिनी केवला

कौल-धर्म का पालन करनेवाली सब धर्मों से विमुक्ता या रहिता। 'शिव-सूत्र'-'तद् विमुक्तस्तु केवला' से इसी भाव का समर्थन है। इससे धर्मातीता या गुणातीता का बोध होता है। अथवा 'केवल'-पद से 'ब्रह्म-विद्या' का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! अन्तर्मुखी दृष्टि से हृदय में दिन-रात कौलिनी-केवला शुद्ध संवित्-रूपिणी माता श्री ललिताम्बा को ध्याओ और चिर-काल तक आनन्द की प्राप्ति करो।

***

(९२६) श्रीअनर्घ्य-कैवल्य-फल-दायिनी

अमूल्य या अपरिच्छिन्न '**कैवल्य**' अर्थात् पाँचवी सर्व-श्रेष्ठ मुक्ति को देनेवाली।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको अनर्घ्य, अमूल्य, अपरिच्छिन्न, कैवल्य-पद को देनेवाली के रूप में ध्याते हैं, पूजते हैं, उनकी सभी काम-वासनाएँ शुद्ध हो जाती हैं।

***

(९२७) श्रीस्तोत्र-प्रिया

गुणानुवाद अर्थात् गुण-कीर्तन-प्रिया। '**स्तोत्र**' के छः लक्षण हैं–

नमस्कारस्तथाशीश्च, सिद्धान्तोक्तिः पराक्रमः।

विभूतिर्प्रार्थना चेति, षड्-विधं स्तोत्र-लक्षणम्।।

'**स्तोत्र**' और स्तुति दोनों पद एकार्थ-वाचक हैं। **स्तुति** का अर्थ परिचय है–'**संस्तवः स्यात् परिचयः।**' इस भाव में परिचय-प्रिया अर्थात् ज्ञान-प्रिया है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको नमस्कार, आशीः, सिद्धान्तोक्ति, पराक्रम, विभूति और प्रार्थना - रूपी स्तोत्रों द्वारा प्रसन्न करते हैं, वे सिद्ध योगी हो जाते हैं।

***

(९२८) श्रीस्तुति-मती

स्तुति-वाली अर्थात् जिसकी स्तुति है। '**स्तुति**' का रहस्यार्थ मौन है–'**मौनं स्तुतिः**' (मण्डल-ब्राह्मणोपनिषत्)। इस भाव में '**स्तुति-मती**' का अर्थ है मौन-वती अर्थात् चुप रहनेवाली, जिससे '**द्रष्टा ब्रह्म**' या '**निष्क्रिय ब्रह्म**' का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आप स्तुति-मती को नित्य नाना प्रकार की स्तुतियाँ सुनाते हैं, उन्हें मति और श्री दोनों की प्राप्ति होती है।

***

(९२९) श्रीश्रुति-संस्तुत-वैभवा

श्रुतियों के द्वारा सम्यक् प्रकार से जिसकी महिमा प्रतिपादित है। '**श्रुति**' से **वैदिकी** और **तान्त्रिकी** दोनों श्रुतियों का बोध होता है। संज्ञा से '**श्रुतयः शक्तावुपेतः**' अर्थात् श्रुतियाँ **शक्ति-वाद** का ही प्रतिपादन करती हैं, इस सिद्धान्त का समर्थन होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको वेदों की स्तुतियों द्वारा सम्यक् प्रकार से स्तुत जानता है, वही आपके चरण-कमलों में बारम्बार नमता है, प्रणाम करता है। अन्य अबुध मूढ़ ऐसा नहीं कर पाते।

***

(९३०) श्रीमनस्विनी

स्वतन्त्र मनवाली। इससे उत्साही और तेजस्वी का तात्पर्य है, परन्तु यहाँ इससे **स्वतन्त्रा सर्व-श्रेष्ठा (परमा) सत्ता** का बोध होता है, जिसकी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति है अर्थात् जो चाहे, सो करे।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आप मनस्विनी को अपनी पत्नी-सहित निशा में पूजते हैं, उनके लोक और पर-लोक दोनों विकसित होते हैं।

***

(९३१) श्रीमान-वती

प्रमाण-वती। इस भाव में **परिमिता शक्ति** का बोध होता है। भगवती **ललिता** अपरिमिता या अप्रमेया भी है और परिमिता या प्रमेया भी है। यह उभयात्मिका है। अथवा प्रिय अपराध-सूचक चेष्टावाली अर्थात् कृत्रिम क्रोध दरसानेवाली का बोध होता है। इस भाव का समर्थन '**सप्तशती**' की उक्ति-'**चित्ते कृपा समर निष्ठुरता च दृष्टा**' से होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

महेश्वर श्री कामेश्वर पर-शिव की मानवाली, त्रि-लोकों की रक्षा के विषय में अनुसन्धानवाली और अपने कर-कमलों में सुधा-पूर्ण प्याला रखनेवाली पराम्बा श्री ललिताम्बा मेरी श्री के लिए कृपा-मयी होवें।

***

(९३२) श्रीमहेशी

महेश या महा-देव की स्त्री या शक्ति। इससे सर्व-श्रेष्ठा परमा सत्ता का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप ही रत्नाकार की पुत्री लक्ष्मी हो। आप ही नगाधीश्वर की पुत्री गौरी हो और आप ही महेश्वर की शक्ति माहेश्वरी हो।

***

(९३३) श्रीमङ्गलाकृतिः

कल्याण-स्वरूपा। जिस प्रकार दया-सिन्धु से दया करनेवाली का बोध होता है, उसी प्रकार इस संज्ञा से मङ्गल अर्थात् कल्याण करनेवाली का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे मङ्गल-मय आकारवाली माता श्री ललिताम्बा! आप के उदार विभुतावाले रूप का वर्णन तभी सम्भव है, जब न टूटने फटनेवाला कागज मिले और न क्षीण होनेवाली स्याही मिले तथा न टूटने-फूटनेवाली कलम मिले।

***

(९३४) श्रीविश्व-माता

विश्व अर्थात् समस्त जगत् की माता अर्थात् उत्पन्न करनेवाली अर्थात् मान करनेवाली (मा माने=त्रिच्)। अथवा 'विश्व' से विश्व-पुरुष का तात्पर्य है-'सोमः पवते जनितोत विष्णोः' (श्रुति)। विष्णु से ज्ञान-शक्ति का तात्पर्य है। इस प्रकार ज्ञान-शक्ति को उत्पन्न करनेवाली विमर्श-शक्ति का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आप विश्व माता की उपासना कर पाते हैं, वे उग्र भाग्यवाले होते हैं। साधारण जन आपकी धारणा नहीं कर पाते।

***

(९३५) श्रीजगद्-धात्री

जगत् को पालनेवाली शक्ति (धर्म)। इससे उस प्राकृतिक विशिष्ट धर्म को रखनेवाली का बोध है, जिससे जगत् की धारणा या अस्तित्व है। इस संज्ञा की एक विशिष्ट दुर्गा-मूर्ति का, जो भगवती ललिता से सर्वथा अभिन्ना है, बोध होता है, जिनकी पूजा शारदीय महोत्सव के पश्चात् कार्तिक मास में होती है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको समस्त जगत् को धारण करनेवाली के रूप में ध्याते हैं, वे न तो किसी से कुछ माँगते हैं, न किसी को पीड़ा पहुँचाते हैं, न किसी का कभी कुछ छल से छीनते हैं और न किसी की निन्दा करते हैं। वे तो प्रायः प्रसन्न रहते हुए, आप जगद्धात्री की कृपा से अद्वय रस का आस्वाद लिया करते हैं।

***

(९३६) श्रीविशालाक्षी

बड़ी आँखवाली। चूँकि बड़ी आँख सुन्दरी की एक विशिष्ट लक्षणा है, इस संज्ञा में '**महा-त्रिपुर-सुन्दरी**' का तात्पर्य है। बड़ी आँख से **सर्व-साक्षित्व** का अन्तस्तात्पर्य है। **वाराणसी (काशी)** पीठ की अभिमानिनी देवता अर्थात् अधिष्ठातृ देवता का भी बोध होता है–'**वाराणस्यां विशालाक्षी**....।' **विशाल पीठ** ही जिसकी आँख (नेत्र-स्थान) है, ऐसा भी अर्थ है। **नेपाल** में '**विशाल-पीठ**' है। '**श्री-क्रम**' के '**पीठ-न्यास**'-प्रकरण में **विशाल-पीठ** का न्यास **नेत्र-स्थान** में होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! सदा विशाल नेत्रवाली माता श्री ललिताम्बा के दृष्टि-पथ में विचरो और सभी प्रकार के रोगों, पातकों, शत्रुओं, दुःखों से मुक्त हो जाओ।

***

(९३७) श्रीविरागिणी

वैराग्य भाववाली। इससे **रजोगुण-रहिता सत्त्व-गुणात्मिका** का बोध होता है और **समता** की सिद्धि है। भगवती (ब्रह्म-रूपिणी) **अनासक्ता** है। इसके न कोई शत्रु है और न कोई मित्र। '**गीतोक्ति**' भी है–

समं सर्वेषु भूतेषु, तिष्ठन्तं परमेश्वरं। ...समोऽहं सर्व-भूतेषु, न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।। इत्यादि। इस भाव में अभोक्ता '**दृष्टा ब्रह्म**' का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! बिना रङ्ग की और विशिष्ट राग-अनुराग-प्रेम-भक्तिवाली भक्तों की मानसी वृत्ति, ज्यों-ज्यों आपके पदारविन्दों के निकट आती है, त्यों-त्यों वह नित्य नया रङ्ग तथा राग-अनुराग-भक्ति-प्रेम पाती है।

***

(९३८) श्रीप्रगल्भा

प्रौढ़ा। इसका वाच्यार्थ है **प्रकृष्ट भाव से गर्विता**। इस प्रकार **सृष्टि आदि कर्मों में चतुरा** है, ऐसा बोध होता है। '**प्रगल्भा**' नायिका का बोध भी है, जो स्वामी के **एक-पतीत्व-व्रत** के कारण गर्विता है। भगवती भी **कामेश्वर** की **एकान्त अनुरक्ति** के कारण गर्विता कही जा सकती है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जो ब्रह्माण्ड की रचना करने में अति चतुर है, जो विश्व का पालन करने में पूर्ण पटु है तथा समूचे प्रपञ्च के संहार करने में भी जो अधिक दक्ष है, वह प्रगल्भा माता श्री ललिताम्बा मुझे वैभव देनेवाली हो।

***

(९३९) श्रीपरमोदारा

इसका साधारण शब्दार्थ है परम अर्थात् बड़े उदार भावोंवाली। 'उदार' महत्ता या श्रेष्ठ-वाचक पद है और दातृ-वाचक पद भी है। इससे बड़ी-से-बड़ी '**महतो महीयान्**' और बहुत देनेवाली दोनों तात्पर्यों का बोध होता है। **अतिशय उदार-हृदया** का भी बोध होता है। इससे तात्पर्य है देश और काल से महत्त्व-वती का।

अथवा 'पर' अर्थात् श्रेष्ठ 'मोद' या आनन्द को विशेष '**परिमाण**' या मात्रा में देनेवाली—'**परं प्रकृष्टं मोदमानन्दं आसमन्तात् राति ददाति या सा**', 'पर+मोद+आ+रा'। अथवा अकार का प्रश्लेषण करने से दरिद्रों को ऐश्वर्य देनेवाली का बोध होता है—

'अपरमा दरिद्रास्तेभ्य उदारा ऐश्वर्य-प्रदा।'

◆◆प्रार्थना◆◆

सम्पदा और समृद्धि के लिए जिनके कृपा कटाक्ष की एक कोर ही पर्याप्त है, परम उदार विश्वेश-पर-शिव के दार पट्ट-महिषी उन श्री ललिताम्बा का आश्रय मुझे सदा मिलता रहे।

***

(९४०) श्रीपरमोदा

पर-आनन्दवती। इससे **परमानन्दावस्था** का बोध होता है। अथवा परम-श्रेष्ठ '**उद**' अर्थात् जल-स्वरूपा या समुद्र-रूपा का बोध है, जिससे '**विराट्-ब्रह्म**' का तात्पर्य है। परम उद से '**पर-ब्रह्म**' का बोध होता है क्योंकि '**उद**' या उदक (जल) ब्रह्म की संज्ञा है—

आपो ज्योती रसोऽमृतम् ब्रह्म, आपो वा इदं सर्वं।

सम्राडापो, विराडापः, स्वराडापः, सत्यमाप, आप ॐ।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त उत्कृष्ट हर्ष देनेवाली आप परमोदा को ध्याते हैं, वे प्रहर्षित मनवाले होते हुए शाश्वत सुख प्राप्त करते हैं।

***

(९४१) श्रीमनो-मयी

मनः-प्रधाना। इससे '**ब्रह्म-मयी**' का बोध होता है, जब '**मन**' से पर-मन का, जो मोक्ष का कारण है, तात्पर्य है। '**महा-वासिष्ठ रामायण**' की उक्ति है–

'स भैरवश्चिदाकाशः, शिव इत्यभिधीयते।
अनन्यां तस्य तां विद्धि, स्पन्द-शक्तिर्मनो-मयी।'

अर्थात् भैरव ही चिदाकाश है, जो शिव कहलाता है। इसी की अभेद-रूप स्पन्द-शक्ति है, जिसे '**मनो-मयी**' कहते हैं। इस प्रकार इस संज्ञा की पर्याय-वाचक संज्ञा है स्पन्द-शक्ति या स्फुरत्ता-शक्ति।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप पर-शिव परमात्मा की मनो-मयी सम्पत् हो। आप संसार में जन्म लेनेवाले सभी प्राणियों का भव से मोक्ष और भव-बन्ध-प्राप्ति का एक स्वतन्त्र मूल-कारण हो। आपके अतिरिक्त मोक्ष का दूसरा कोई कारण नहीं है।

***

(९४२) श्रीव्योम-केशी

व्योम ही केश है जिसका। '**व्योम**' आकाश-वाचक है और '**केश**' से ऊर्ध्व-देश का बोध होता है। इस भाव में '**विराट्-रूपिणी**' का बोध है क्योंकि आकाश अनन्त-देश का बोधक है। अथवा क्षुद्राकाश की स्वामिनी है, ऐसा बोध है, जब पद-विच्छेद इस प्रकार है–'**व्योमक+ईशी, व्योमक शब्द+कन् प्रत्यय**', जिसका अल्पार्थ में भी प्रयोग है, युक्त अर्थ है। अथवा '**व्योमकेश**' नाम **शिव** का है। इस भाव में अर्थ है **शिवा**। अथवा '**व्योमक**'-रूपी की शक्ति (स्त्री) चिद्-रूपा।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! अगाध गगन ही है केश-पाश जिनका, उन व्योम-केशी माता श्री ललिताम्बा को ध्याओ, भजो और यश, गुण, ज्ञान, धन, बल, ओज में विशाल-से-विशाल बन जाओ।

***

(९४३) श्रीविमानस्था

व्योम-यान पर रहनेवाली। **व्योम-यान** या **विमान** एक विशिष्ट मार्ग की संज्ञा है, जिस पर होकर जीवात्मा ऊपर जाता है। इसे **देव-यान** और **पितृ-यान** दोनों कह सकते हैं। अथवा '**मान**' का अर्थ है जब प्रमाण है, तब विशेष प्रमाण में जिसकी स्थिति है वह, ऐसा बोध होता है। अथवा जिसका मान नहीं है, उस भाव में रहनेवाली। ऐसा अर्थ तब है, जब '**वि**' से विगत का तात्पर्य है। इस भाव से **अप्रमेया** का बोध होता है। अथवा विशेष '**मान**' अर्थात् आदर में जिसकी स्थिति है, वह।

◆◆प्रार्थना◆◆

असंख्य ब्रह्माण्डों में अपनी की हुई व्यवस्था को तथा उस व्यवस्था में अधिकारी बनाए हुए देवों को देखने हेतु अपनी सखियों-मन्त्रिणी के साथ विमान में बैठी हुई, गगन में विहार करती हुई पराम्बा श्री ललिताम्बा मेरे मन-रूप कमल में भ्रमर-वत् विराजती रहें।

***

(९४४) श्रीवज्रिणी

वज्र को रखनेवाली। अथवा वज्री अर्थात् इन्द्र की स्त्री शची-स्वरूपा अथवा 'ब्रह्म-वती'। 'वज्र' से 'ब्रह्म' का तात्पर्य है–'महद्-भयं वज्रमुद्यतम्' (श्रुति)। 'वज्र'-पद का ब्रह्मत्व अपरिच्छेदक-सम्बन्ध से है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जिन भक्तों के हृदय में आप हाथों में वज्र धारण कर उदित होती हो, उनकी विपदाएँ सदा के लिए दूर भाग जाती हैं और उनका दारिद्र्य उनके शत्रु-कुल में विलीन हो जाता है तथा सभी प्रकार के रोग-बीमारियाँ सूख जाती हैं।

***

(९४५) श्रीवामकेश्वरी

'वामकेश्वर'-तन्त्र-रूपा या प्रतिपाद्या। इसकी व्याख्या ३५१वें नाम में देखें।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको वाम-मार्ग प्रतिपादित नियमों और उपचारों से, वाम शिव के सम्मुख अर्थात् शिवालय में, अपनी शक्ति के साथ आराधना करता है, वह अपने विरोधियों को सर्वत्र पराजित करता है।

***

(९४६) श्रीपञ्च-यज्ञ-प्रिया

पाँच प्रकार के यज्ञों की प्रिया। इन पाँचों के नाम हैं–१. देव-यज्ञ, २. ब्रह्म-यज्ञ, ३. भूत-यज्ञ, ४. पितृ-यज्ञ और ५. मनुष्य-यज्ञ। इनका उल्लेख 'स्मृतियों' में है। 'पञ्च-रात्र आगम' के मत से इनके नाम है–**अभिगमनमुपादानमिज्या-स्वाध्याय योगः**।

'यज्ञ' नाम पूजा का है। इस प्रकार 'पञ्च-पूजा' की परिभाषा तन्त्रों में भिन्न-भिन्न है (देखिए, 'कुलागम' और 'नित्या-तन्त्र')। 'मन्त्र-महोदधि' में इन पाँचों के नाम हैं—१. आतुरी, २. सौतुकी, ३. दौर्वोधी, ४. त्रासी और ५. भाविनी। (इनकी व्याख्या 'श्रीकाली-नित्यार्चन' में देखिए)। अथवा 'पञ्च' का जो 'पचि' धातु से बनता है, विस्तार में प्रयोग होता है। इसका तात्पर्य है विस्तृत। इस भाव में विस्तृत 'यज्ञ' या साङ्गो-पाङ्ग पूजन की प्रिया है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! वेदों, स्मृतियों, पञ्च-रात्रागम, कुलागम में कही गई पूजाएँ आपको प्रसन्न करती हैं। देव, पितर, महर्षि और मनुष्य सभी पञ्च-यज्ञ-प्रिया आप महेश्वरी को उक्त पूजा के द्वारा प्रसन्न कर आश्रय ग्रहण करते हैं।

***

(९४७) श्रीपञ्च-प्रेत-मञ्चाधि-शायिनी

'पञ्च-प्रेत'-रूपी 'मञ्च' (पलङ्ग) पर सोनेवाली। इसकी व्याख्या २४९वें नाम में है, इससे विष्णु 'व्यापनाद् विष्णुः' है अर्थात् पराऽम्बा ललिता की योग-निद्रा अर्थात् निष्क्रियावस्था का बोध होता है, जब वियदादि पञ्च-महा-भूतों (तत्त्वों) के अभिमानी या अधिष्ठात्री देवता ब्रह्मा आदि 'प्रेत' या 'गत-शक्ति' या 'निष्क्रिय' हो रहे हैं। तात्पर्य है कि धर्मी शक्ति की धर्म-शक्तियाँ संकुचित होकर निष्क्रिय हो रही हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको पञ्च प्रेतों के आसन पर बैठनेवाली समझकर हर्ष के साथ पूजते-भजते-ध्याते हैं, वे पञ्च देवों से भी बढ़कर सिद्धि को प्राप्त करते हैं।

***

(९४८) श्रीपञ्चमी

पाँचवीं। इससे पञ्च प्रकार के ब्रह्म के पाँचवें रूप 'तुरीयातीत-रूप' का बोध होता है।

अथवा पञ्चमी महा-विद्या में 'प्रपञ्चेशी' या 'भुवनेशी' का बोध है (शक्ति-सङ्गम)–

'प्रकर्षेण तु पञ्चानां, संयोगो युग-पद् भवेत।
प्रपञ्चेशी तेन विद्या, सुन्दरी परिकीर्तिता।'

अथवा प्रणव की पाँचों रश्मियों में से पाँचवीं रश्मि का, जो परमा रश्मि है, बोध होता है।

अथवा पाँचवें आकाश की अधिष्ठात्री शक्ति का बोध होता है।

अथवा 'पञ्च+म=ङीप्' पञ्चमी से 'पाँच मकारों' का बोध होता है। तात्पर्य कि 'आनन्द-ब्रह्म' का बोध होता है।

अथवा पञ्चम शकट का बोध है, जिसका उल्लेख 'दक्षिणा-मूर्ति-संहिता' में ऐसा है–

'पञ्चमी शकटं यन्त्रं, त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।'

अथवा 'कैवल्य' नाम की पाँचवी मुक्ति का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको विधि-वत् पञ्च-मकारों से पूजते हैं, उन्हें पाँचवीं मुक्ति कैवल्य की प्राप्ति होती है और वे आवागमन से मुक्त हो जाते हैं।

***

(९४९) श्रीपञ्च-भूतेशी

पाँचों महा-भूतों की स्वामिनी। महा-भूतों से वियदादि तत्त्वों का तात्पर्य है। अथवा पाँच तत्त्वों से बने (पञ्च-भूत=पञ्चधा तत्त्वैः भूतः जातः) विश्व की स्वामिनी है, ऐसा बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको पाँचों भूतों की ईश्वरी के रूप में स्व आत्मा में ध्याते हैं, पूजते हैं, वे योगियों में श्रेष्ठ होते हैं और उन्हें पाँचों भूतों की सिद्धि की प्राप्ति होती है।

***

(९५०) श्रीपञ्च-संख्योपचारिणी

पञ्चोपचारवाली। **पञ्चोपचार** से १. गन्ध, २. पुष्प, ३. धूप, ४. दीप और ५. नैवेद्य का स्थूल भाव में तात्पर्य है (इनके सूक्ष्म या आध्यात्मिक विस्तृत अर्थ 'पूजा-रहस्य' में दिए गए हैं)। 'उपचार' का रहस्यार्थ है–'तादात्म्य'–'उप' समीपे चारो 'गमनः' स्थितिः। इस रहस्य-भाव में पाँच प्रकार के साम्य होनेवाली का बोध होता है। इन पाँचों के नाम हैं–१. अधिष्ठान-साम्य, २. अवस्थान-साम्य, ३. अनुष्ठान-साम्य, ४. रूप-साम्य और ५. नाम-साम्य।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जिनके पास विशेष उपचार नहीं है, वे अकिञ्चन भक्त भी आपको भली-भाँति पूज सकते हैं। आप पाँच उपचारों से भी प्रसन्न होनेवाली हो। ये पाँचों मानसिक लिए जाएँ, तो भी आप प्रसन्न होती हो।

***

(९५१) श्रीशाश्वती

नित्या। पौनः-पुन्य-सम्बन्धिनी। 'शाश्वत' का अर्थ है अचल या ध्रुव। इस भाव में शाश्वत सिद्धि-रूपा है। तात्पर्य कि इसके उपासकों को **शाश्वती सिद्धि** प्राप्त होती है, दूसरों को नहीं (श्रुति)– 'तेषां सिद्धिः शाश्वती नेतरेषाम्'।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आप महा-शक्ति को शाश्वत समझ कर भजते हैं, ध्यान करते हैं, उन्हें शाश्वत शान्ति और सुख की प्राप्ति होती हैं।

***

(९५२) श्रीशाश्वतैश्वर्य्या

नित्य ऐश्वर्यवाली अर्थात् जिसके ऐश्वर्य अर्थात् सत्ता में कभी ह्रास नहीं होता। इससे विश्व की, जो भगवती के ऐश्वर्य का प्रतीक है, नित्यता सिद्ध है। ऐसा सिद्धान्त तर्क-शास्त्रानुमोदित है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! सभी देवादि अनन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए आप शाश्वत ऐश्वर्यवाली परमेश्वरी को भजते हैं। जो भक्त आपको भजते हैं, उन्हें इन देवों की भी कृपा की प्राप्ति होती है।

***

(९५३) श्रीशर्मदा

सुख देनेवाली। सुख से सांसारिक और पारमार्थिक सुख-द्वय अर्थात् भोग और मोक्ष का तात्पर्य है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे दुरितों (पापों) को विदारण करनेवाली दुःखों को मुझ से दूर कीजिए। हे निर्मल आशयवाली मेरे मन को शीघ्र निर्मल कीजिए। हे शर्मदे, हे कल्याण देनेवाली मुझे सुख दीजिए। मैं आपके चरण कमलों को विनय-पूर्ण भावों से प्रणाम करता हूँ।

***

(९५४) श्रीशम्भु-मोहनी

शिव-मोहनी अर्थात् शिव को वश में रखनेवाली चित्-परातीता शक्ति। 'शम्भु' की परिभाषा है-'शं' अर्थात् मङ्गल की भावना जो करे-शं भावयति भजते वा शम्भुः।' 'मोहनी' से 'ह्लादिनी शक्ति' का भी बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त जगत् के कल्याण करनेवाले शम्भु को मोहित करनेवाली आप अम्बिका को निशा में विधि-पूर्वक पूज कर माया-बीज जपते हैं, वे जगत् को मोहित करने में समर्थ हो जाते हैं।

***

(९५५) श्रीधरा

पृथ्वी। इससे स्थिति या धारणा-शक्ति का बोध होता है। अथवा लकार-स्वरूपा है- 'लकारः पृथ्वी देवी' (ज्ञानार्णव तन्त्र)।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! समस्त विश्वों के धारण करने से आप 'धरा' कहलाती हो। आपका बीज 'लं' है। 'पचास पीठ' सिद्ध क्षेत्र-मयी होने से आप सर्व-तीर्थ-मयी हो। इस प्रकार आपको जो स्थिर-माया 'ह्लीं' के रूप में जपते हैं, वे महा-भूतों के स्तम्भन में सिद्ध हो जाते हैं।

***

(९५६) श्रीधर-सुता

हिमालय की पुत्री पार्वती। इसकी 'श्रौत' पर्याय-वाचक संज्ञाएँ हैं—अद्रिजा, हैमवती इत्यादि, जिनसे 'ब्रह्म' का बोध होता है। (देखिए 'केनोपनिषत्' ३।१२ और 'कठोपनिषत्') इस सिद्धान्त का स्पष्टीकरण 'ब्रह्म-सूत्र'-'श्रुतत्त्वाच्च' के 'शक्ति-भाष्य' में है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप विश्व को पैदा करनेवाली होकर भी, एक पर्वत की पुत्री होती हो। सब के मोह को नष्ट करनेवाली होकर भी, परम पुरुष भगवान् विष्णु को मोहती हो। सभी जगत् की आदि आद्या होकर भी, शम्भु की पत्नी हो। आपके इस विचित्र विलक्षण चरित का वर्णन सम्भव नहीं है।

***

(९५७) श्रीधन्या

कृतार्था। अथवा 'धन' के प्रति हिता—'धनाय हिता'। अथवा धन का लाभ करानेवाली 'धनं लब्ध्री, धन-गणं लब्धा—यत् प्रत्ययः।'

अथवा शास्त्रोक्त १. आर्त्त, २. रौद्र, ३. धन्य और ४. शुक्ल—इन चारों प्रकार के चरम ध्यानों में की 'धन्य' नाम की ध्यान-स्वरूपा है। इन चारों के लक्षण 'भविष्योत्तर-पुराण' में दिए हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको 'धन्या' समझते हुए आपको पूजते हैं, आपका जप करते हैं, वे धन-धान्य युक्त हो कीर्तिशाली होते हैं।

***

(९५८) श्रीधर्मिणी

धर्म-शाली। इससे परा धर्मी-शक्ति का बोध होता है, जिसकी ही सारी धर्म-शक्तियाँ हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! निश्चय ही धर्म आप में विराजता है। धर्म आप में आश्रित होकर ही शोभा, जय प्राप्त करता है, जैसे आकाश में सूर्य शोभा पाता है और अपनी किरणों से लोकों को धारण करता है।

***

(९५९) श्रीधर्म-वर्धिनी

धर्म को बढ़ानेवाली (शक्ति)। इससे 'ज्ञान-शक्ति' का बोध होता है क्योंकि ज्ञान से ही तत्तद्-विषय के धर्म या गुण की वृद्धि होती है।

अथवा इससे धर्म का छेदन करनेवाली का बोध होता है, कारण 'वृधु' धातु का, जिससे 'वर्धन'-शब्द बनता है, छेदन में भी प्रयोग होता है—'वृधु छेदने।' इस भाव में ब्रह्माधिष्ठान के धर्म-

मात्र की, जो दृश्य-जात है, छेदन करनेवाली का तात्पर्य है अर्थात् धर्म-भाव को दूरकर धर्मी मात्र की भावना (धारणा) रहने देती है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको धर्म-वर्धिनी जानकर आपका स्मरण और स्तुति करते हैं, उनके धर्म की वृद्धि होती है और वे परम धार्मिक होकर निरन्तर आनन्द को प्राप्त करते हैं।

***

(९६०) श्रीलोकातीता

तीनों अथवा सातों लोकों से परे। स्थूल रूप में त्रि-लोक हैं—१. पाताल (अधो-लोक), २. पृथ्वी (मध्य-लोक) और ३. स्वर्ग (पर-लोक)। सप्त-लोक हैं—१. भूर्लोक, २. भुवर्लोक, ३. स्वर्लोक, ४. महर्लोक, ५. जन-लोक, ६. तपो-लोक और ७. सत्य-लोक। इनसे सूक्ष्म तात्पर्य है ज्ञान की सप्त भूमिकाओं का, जिनसे परे अर्थात् अतीत होने से तात्पर्य है तुरीयातीता, अनिर्वाच्या 'महा-शक्ति' का।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! लोकों से अतीत ब्रह्मा-विष्णु आदि सभी के लोकों के ऊपर, अमृत-समुद्र के मणि-मय द्वीप-राज में मन्दार-वृक्ष की बगिया में, चिन्तामणि-रत्न से निर्मित भवन में, सखियों के साथ विराजमान माता श्री ललिताम्बा को ध्याओ और देवों के भी माननीय हो जाओ।

***

(९६१) श्रीगुणातीता

गुणों अर्थात् तीनों गुणों से परा। इससे 'निर्गुणा' का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! सत्त्वादि गुणों को आप अपनी कला से प्रकट कर तत्काल ही उनसे दूर आकाश की तरह असंग हो जाती हो क्योंकि आप तो शिव की सह-चारिणी हो। गुण आप पर कभी आक्रमण नहीं करते। वे अपना कुछ भी प्रभाव आप पर नहीं डाल सकते।

***

(९६२) श्रीसर्वातीता

सबसे परे। इससे शब्दातीत गणना-रहित '**ब्रह्म-रूपिणी**' है, ऐसा बोध होता है। ऐसी लक्षणा का उल्लेख 'ज्ञानार्णव' में भी है—'शब्दातीतं पर-ब्रह्म, गणना-रहितं सदा।'

◆◆प्रार्थना◆◆

समस्त भाव, भूत, इन्द्रिय, गुण तथा विष्णु, ब्रह्मा, शिव आदि देवों को भी अतिक्रान्त करनेवाली एवं मन, वाणी और बुद्धि से भी परे होनेवाली हे माता श्री ललिताम्बा! आप सर्वातीत हो! हम आपको प्रणाम करते हैं।

***

(९६३) श्रीशमाश्रिता

'शम' अर्थात् निवृत्ति की आश्रिता। अथवा शम् अर्थात् मङ्गल की आश्रिता। आश्रिता से अधिष्ठिता का तात्पर्य है। निवृत्ति से तात्पर्य है प्रपञ्च-निवृत्ति का। इस भाव में प्रपञ्चातीता का बोध होता है। इसी को अनुपहित चेतना कहते हैं। यह अद्वैत ब्रह्म का बोधक है और 'शम्' की आश्रिता या 'शम्' ही जिसका आश्रित हो वह, ऐसे भाव में 'आनन्द-ब्रह्म' का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आपके चरण-कमलों की प्राप्ति शम के ही आश्रित है। जब भक्तों का शम बलवान् होता है, तभी उन्हें आपके चरणों की प्राप्ति होती है। आपकी पूजा, उपासना शम-प्रधाना है।

***

(९६४) श्रीबन्धूक-कुसुम-प्रख्या

बन्धूक फूल के समान वर्णवाली। बन्धूक फूल का रङ्ग लाल होता है। इससे रक्त कान्तिवाली का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! अरुणारुण शोभावाली माता श्री ललिताम्बा को हृदय में ध्याओ और प्रपञ्च में सुन्दर ढङ्ग से रत रहो।

***

(९६५) श्रीबाला

कुमारी या छोटी लड़की। 'श्रुति' भी ब्रह्म के इस रूप का प्रतिपादन करती है–

'त्वं कुमार उत वा कुमारी'।

'त्रिपुरा-सिद्धान्त' में 'बाला' की परिभाषा है कि बाल-वत् लीला करती है, इसी से 'बाला' कहा जाता है–'बाल-लीला-विशिष्टत्वाद्, बालेति कथिता प्रिये।'

◆◆प्रार्थना◆◆

अधिकाधिक स्नेहवाली, सुधा-पान के कारण अरुण दृष्टिवाली, स्फुरित कमलों की मालावाली, अकारण कृपा करने में कुशल माता बाला-त्रिपुर-सुन्दरी को मैं हृदय में स्मरण करता हूँ। वे मेरे मनोरथ पूर्ण करें।

***

(९६६) श्रीलीला-विनोदिनी

क्रीड़ा में आनन्दित होनेवाली। लीला से **प्रापञ्चिकी लीला** का तात्पर्य है। यह **'बाला'** की विशेषण संज्ञा है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! प्रपञ्च के विस्तार और देवताओं की सहायता हेतु लीलाएँ जिसका विनोद-मात्र हैं, ऐसी भवानी जगदम्बा श्री ललिताम्बा को नित्य प्रणाम करो और भुक्ति व मुक्ति को सुनिश्चित कर लो।

***

(९६७) श्रीसु-मङ्गली

सुन्दर अर्थात् अधिक मङ्गल अर्थात् कल्याण-स्वरूपा। **'सु'** का प्रयोग अधिक में भी है–यथा **'सु-दुराचारः'** अर्थात् अत्यधिक दुराचार। मङ्गल से **'ब्रह्म'** का भी तात्पर्य है–**'श्रुति-मात्रेण यत् पुंसां, ब्रह्म तन्मङ्गलं विदुः।'** क्योंकि यह अमङ्गल या अशुभ को हटाता है और शुभ मङ्गल करता है–

अशुभानि निराचष्टे, तनोति शुभ-सन्ततिम्।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! सदा मङ्गल करनेवाली, सुख सम्पत् देनेवाली, पवित्र ज्ञान-मयी माता श्री ललिताम्बा के पद-प्रभा को ध्याओ और सभी मङ्गलों की प्राप्ति को स्थिर कर लो।

***

(९६८) श्रीसुख-करी

सुख करने अर्थात् देनेवाली। सुख से नित्य सुख अर्थात् दुःख से मुक्ति का तात्पर्य है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आपकी भक्ति पापों को छेदती है, काटती है, पुण्य बढ़ाती है, विद्या देती है, लक्ष्मी देती है, विपदाओं को दूर करती है और समुज्ज्वल यश फैलाती है।

***

(९६९) श्रीसु-वेषाढ्या

सुन्दर वेष-युक्ता। **'वेष'** का अर्थ है अङ्गों का व्यापन करनेवाली। **'वेष'** और **'वेश'** दोनों एकार्थ-वाचक हैं। इसका एक प्रकार का अर्थ है कि जो मन को अपनी तरफ आकर्षित करे, वही **'वेष'** या **'वेश'** है–**'विशति यूनां मनः विश् प्रवेशे।'** इससे **आकर्षणत्व** का बोध होता है, जिस अर्थ में कृष्ण पद का प्रयोग है–**'कर्षणात् कृष्णः।'**

◆◆प्रार्थना◆◆

सुन्दल लाल रङ्ग की साड़ी पहने हुए, लाल रङ्ग के कोमल रेशमी वस्त्रों से उर-स्थल को आच्छादित किए, सिर पर सोने का बना रत्नों से जड़ा मुकुट धारण किए हुए सु-वेषा माता श्री ललिताम्बा महारानी मेरा मङ्गल करती रहें।

***

(९७०) श्रीसु-वासिनी

सर्व-काल-जीवत्-पतिका या सधवा स्त्री। यथार्थ में भगवती ही मात्र '**सुवासिनी**' है क्योंकि इसी का पति अर्थात् शिव सर्वदा जीवित रहता है, कभी मरता नहीं। शिव का अभरत्व इसी कारण से है। इस भाव का समर्थन '**आनन्द-लहरी**' के २७ वें पद्य में है (देखिए '**आनन्द-लहरी**')।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त चक्र-पूजा में आपका यजन करते हुए, सुवासिनी सौभाग्यवती का भाव-पूर्ण पूजन करते हैं, उनके आनन्द के आगे स्वर्ग का सुख भी तुच्छ होता है।

***

(९७१) श्रीसुवासिन्यर्चन-प्रीता

सुवासिनी-पूजा से सन्तुष्टा या प्रसन्न होनेवाली। यहाँ '**सुवासिनी**' से गौण सुवासिनी अर्थात् यथार्थ **अद्वैता सुवासिनी** के प्रतीक-स्वरूपा **पाञ्च-भौतिकी सुवासिनी** का तात्पर्य है। '**कल्प-सूत्र**'-'**तद्-रूपिणीमेकां शक्तिं सम्पूज्य**' का ऐसा ही तात्पर्य है। यह पूजन **पराम्बा-पूजन** का एक प्रधान आवश्यक अङ्ग है। इसमें '**स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु**' का भाव सन्निहित है। यह भी एक प्रतीकोपास्ति है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! यदि तुम अखण्ड सम्पत्ति चाहते हो, तो सौभाग्यवती स्त्रियों के पूजन से प्रसन्न होनेवाली माता श्री ललिताम्बा को ध्याओ, भजो एवं स्वयं भी सौभाग्यवती स्त्रियों का पूजन करो।

***

(९७२) श्रीआशोभना

अतिशय सुन्दरी '**आ समन्तात् शोभना।**' इसकी पर्याय-वाचक संज्ञा है '**महा-त्रिपुर-सुन्दरी**'। इससे '**सच्चिदानन्द ब्रह्म**' का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! सुवर्ण के बने जड़ाऊ किरीट और मणि-मय कुण्डल व हार तथा ललन्ती झूमकदार मालाएँ, भुज-बन्द, कंकण, करधनी, पायल, नुपूर, बिछिया, मुंदरी आदि सभी भूषण आपके अङ्गों में विशेष शोभाशाली दिखाई पड़ते हैं। आप सभी को शोभित करती हो।

***

(९७३) श्रीशुद्ध-मानसा

शुद्ध मनवाली। मन दो प्रकार का है–एक शुद्ध और दूसरा अशुद्ध। शुद्ध मन वासना-रहित है, जिससे मुक्ति है और अशुद्ध मन काम-सङ्कल्प-युक्त है, जिससे बन्धन है 'श्रुति' (मैत्रायण्युपनिषत्)–

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं, शुद्धं चाशुद्धमेव च।
अशुद्धं काम-सङ्कल्पं, शुद्धं काम-विवर्जितम्।।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त शुद्ध मानस करनेवाली आपको योग-दृष्टि से हृदय में देखते हैं, ध्याते हैं, भजते हैं, वे शुद्ध मनवाले होकर आपमें लय हो जाते हैं।

***

(९७४) श्रीविन्दु-तर्पण-सन्तुष्टा

स्थूल भाव में यह अर्थ है कि श्रीचक्र के विन्दु-स्थान पर तर्पण होने से सन्तुष्ट (सम्यक् प्रकार से तुष्ट) होनेवाली, परन्तु इसका रहस्यार्थ है विन्दु अर्थात् जीव-भाव के '**तर्पण**' या '**समर्पण**' अर्थात् '**तादात्म्य**' से सन्तुष्ट होनेवाली। विन्दु से ब्रह्म और जीव दोनों का तात्पर्य है। ('**तर्पण**' का विस्तृत रहस्य '**पूजा-रहस्य**' में देखिए)।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको सुधा की एक बिन्दु मात्र से तर्पण करते हैं, वे आपकी प्रीति का पात्र बन जाते हैं।

***

(९७५) श्रीपूर्वजा

पूर्व होनेवाली। पूर्व से आदि या सबसे पूर्व का बोध होता है। इसकी पर्याय-वाचक संज्ञा है 'आद्या'। 'श्रुति' कहती है–

इयमेव सा या प्रथमाऽव्योच्छत्। अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य।।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! संसार के तीव्र ताप का निवारण करनेवाली, आधि-भौतिक सूक्ष्म भूतों की सृष्टि करनेवाली, परात्पर परमात्म-तत्त्व का प्रकाश करनेवाली माता श्री ललिताम्बा का स्मरण करो और माया के परे-से-परे होनेवाले वैभव को जान लो।

***

(९७६) श्रीत्रिपुराऽम्बिका

त्रिपुर-जननी। तीनों लोकों की माता अर्थात् उत्पन्न और संरक्षण करनेवाली।

अथवा 'त्रिपुर' से जीव का बोध होता है, जैसा 'श्रुति' कहती है कि तीनों पुरों में खेलनेवाला जीव है–'पुर-त्रये क्रीडति यश्च जीवः।' इस भाव में जीव-जननी का बोध होता है।

अथवा आठवें चक्र की अभिमानिनी 'त्रिपुराम्बा' नाम की भगवती का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको त्रिपुराम्बिका के रूप में ध्याता है, भजता है, वह सभी प्रकार की व्यथाओं से मुक्त हो जाता है।

***

(९७७) श्रीदश-मुद्रा-समाराध्या

दश-मुद्राओं द्वारा आराधना करने योग्य। इन दसों के नाम हैं–१. सर्व-संक्षोभिणी, २. सर्व-विद्राविणी, ३. सर्वाकर्षिणी, ४. सर्व-वशङ्करी, ५. सर्वोन्मादिनी, ६. सर्व-महांकुशा, ७. सर्व-खेचरी, ८. सर्व-वीजा, ९. सर्व-योनि और १०. सर्व त्रिखण्डा।

नवात्मक श्री-चक्र के पृथक्-पृथक् चक्रों के पूजन में उक्त मुद्राओं की और समष्टि अर्थात् सभी के एकत्र पूजन में दसवीं मुद्रा की आवश्यकता होती है। ये मुद्राएँ क्रमशः १. अणिमा, २. लघिमा, ३. महिमा, ४. ईशित्व, ५. वशित्व, ६. प्राकाम्य, ७. भुक्ति, ८. इच्छा, ९. प्राप्ति और १०. सर्व-काम सिद्धियाँ देनेवाली हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको संक्षोभिणी आदि दस मुद्राओं से आराधिता समझकर नित्य पूजता है, वह सभी प्रकार के भय, शङ्का से मुक्त हो जाता है।

***

(९७८) श्रीत्रिपुरा-श्री-वशङ्करी

'त्रिपुरा-श्री' नाम की पाँचवें चक्र की अधिष्ठात्री देवता को अपने वश में करनेवाली अर्थात् उसकी प्रेरिका शक्ति।

'त्रिपुरा-श्री' की परिभाषा है–'लोक-त्रय-समृद्धीनां हेतुत्वाच्चक्र-नायिका त्रिपुरा-श्रीः' अर्थात् तीनों लोकों की समृद्धियों की कारण होने से यह चक्र-नायिका 'त्रिपुरा-श्रीः' है (योगिनी-

हृदय)। इसका ऐसा रहस्यार्थ है कि लोक-त्रय अर्थात् मातृ-मान-मेय लक्षणा की समृद्धि अर्थात् परिपूर्ण प्रमातृ-विश्रान्ति-लक्षणों की मूल कारण होने से 'त्रिपुरा-श्रीः' संज्ञा है। इसकी वशङ्करी होने से समस्त 'चक्रेश्वरी' का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! गुरु-मुख से पञ्चम चक्र की अधिष्ठात्री त्रिपुरा-श्री वंशकरी को जानकर माता श्री ललिताम्बा की आराधना करो और तीनों लोकों को अपने वश में कर लो।

***

(९७९) श्रीज्ञान-मुद्रा

ज्ञान-मुद्रा-स्वरूपिणी। 'ज्ञान-मुद्रा' की स्थूल लक्षणा या रूप है-तर्जनी-अंगुष्ठ का योग। अथवा ज्ञान और आनन्द देनेवाली है-'ज्ञानं च मुदं च राति ददाति।' अथवा 'ज्ञान' अर्थात् चिदंश और 'मुदम्' अर्थात् आनन्दांश की देनेवाली अथवा 'द्रावण' करनेवाली है-

'ज्ञानं च मुदं च द्रावयति आवृणोति।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप जब सभा-मण्डप के बीच सिंहासन पर विराजित हो ज्ञान-मुद्रा दर्शाते हुए, देव-गणों ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि को तत्त्वोपदेश करती हो, तब वेदान्तियों का 'नेति नेति' वचन व्यर्थ हो जाता है। आप स्वयं ज्ञान-मुद्रा प्रदर्शित करते हुए स्वरूपादि तत्त्व समझाती हो।

***

(९८०) श्रीज्ञान-गम्या

ज्ञान से जानने योग्य। ज्ञान से प्रत्यक्ष ज्ञान और परोक्ष ज्ञान-दोनों का तात्पर्य है। इसकी पर्याय-वाचक संज्ञा है-'बोधैक-गम्या।'

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! माता श्री ललिताम्बा की उपासना ज्ञान-गम्या है। ज्ञान के बिना कर्म, भक्ति का उदित होना सम्भव नहीं है। अतएव तुम सतत ज्ञान-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते रहो। जिस प्रकार भौंरा भिन्न-भिन्न पौधों-पुष्पों से पराग ग्रहण करता है, उसी प्रकार तुम भी अधिक-से-अधिक तत्त्व-ज्ञानी गुरुओं से ज्ञान प्राप्त करो अथवा उनके द्वारा रचित स्तुति आदि का वाचन करो।

***

(९८१) श्रीज्ञान-ज्ञेय-स्वरूपिणी

दृक् और दृश्य-रूपिणी। तात्पर्य कि भगवती यद्यपि ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय तीनों रूपिणी हैं, तथापि विशिष्ट भाव से 'ज्ञान' अर्थात् विद्या और 'ज्ञेय' अर्थात् वेद्य या जानने योग्य हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! ज्ञान, ज्ञेय दोनों स्वरूपवाली माता श्री ललिताम्बा को निरन्तर हृदय में देखो और अद्वैत-रूपी अमृत का पान करो।

***

(९८२) श्रीयोनि-मुद्रा

योनि-मुद्रा-स्वरूपिणी, योनि में आनन्द देनेवाली, योनि से आनन्द देनेवाली इत्यादि। योनि से '**ब्रह्म-योनि**' या **समष्टि-योनि** और **व्यष्टि-योनि** दोनों का तात्पर्य है। '**ब्रह्म-योनि**' की पर्याय-वाचक संज्ञा **सर्व-योनि** है, जो नवीं मुद्रा है, जिसकी देवता स्वयं महा-त्रिपुर-सुन्दरी है।

अथवा योनि ही जिसकी मुद्रा अर्थात् आच्छादन-कर्त्री है। ऐसी **विन्दु-स्वरूपिणी** है। इसकी वासना है **पदार्थ की अभावना या स-विकल्प समाधि**। '**मन्त्र-योग**' की '**योनि-मुद्रा**', जिसकी आवश्यकता मन्त्र-दोषों के निरसन में है, गुरु से सीखी जानी चाहिए।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको योनि-मुद्रा बनाकर सिर झुकाकर नित्य स्मरण करते हैं, वे विद्वान्, सुन्दर, ऐश्वर्यवान् हो जाते हैं।

***

(९८३) श्रीत्रिखण्डेशी

त्रिखण्डा की, जो दसवीं मुद्रा है, स्वामिनी। इससे तुरीयाम्बा का बोध होता है, जो इसकी अधिष्ठातृ देवता है। अथवा चन्द्र, सूर्य और अनल–त्रिखण्डों की स्वामिनी–उक्त तीनों खण्डों के बने पञ्च-दशी विद्या और श्री-चक्र हैं–

'त्रिखण्डं मातृका-यन्त्रं, सोम-सूर्यानलात्मकम्।'

अथवा '**त्रिखण्ड**' से **प्रमातृ-प्रमाण-प्रमेय** का बोध होता है। इस भाव में इन तीनों भावों की स्वामिनी है अर्थात् **खण्ड-त्रय की अखण्डा बुद्धि** (वृत्ति या भाव) स्वरूपा।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको दसवीं त्रिखण्डा मुद्रा बनाकर दिखाता है और भक्ति-पूर्वक आपका स्मरण करता है, उसे आप श्री-सम्पदाएँ देती हो।

***

(९८४) श्रीत्रिगुणा

(९८५) श्रीअम्बा.

तीनों गुणों की जननी या उत्पन्न करनेवाली **महा-माया**। इस संज्ञा द्वारा '**सांख्य-मत**' से प्रकृति-मूला **प्रकृति** का बोध होता है और '**शाक्त-वेदान्त**' के सिद्धान्त के अनुसार '**उपहित चेतना**' का।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! सत्त्व, रजस्, तमस् इन तीनों गुणों की आश्रय-दाता माता श्री ललिताम्बा की उपासना करो और अपने भीतर व अपने से बाहर गुणों के सन्तुलन के उपायों को जान लो।

***

◆◆प्रार्थना◆◆

जो कामेश्वर पर-शिव के सुकृतों का पुञ्ज है, जिसने विष्णु भगवान् को अवलम्बन दिया है, विश्व-मात्र में जिसका प्रतिबिम्ब समाया है, जिसकी दी हुई सृजन-शक्ति से विधाता ने जगत् रचा है, जिसने अनेक बार दुष्ट दैत्यों के बल को चूरं किया है, ऐसी अम्बा श्री ललिताम्बा की तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति हेतु मैं सदा स्तुति करता हूँ।

***

(९८६) श्रीत्रिकोणगा

त्रिकोण में जानेवाली। इससे विन्दु का बोध होता है। विन्दु का प्रथम-रूप त्रिकोण है। अनन्त विन्दुओं अथवा '**विन्दु**' के शक्ति-प्रवाह एक धारा में होने से पंक्ति या रेखा बनती है। '**विन्दु**' परमाणु है। '**अङ्क-शास्त्र**' में इसकी संज्ञा '**परिमण्डल**' है। दो विन्दु या द्व्यणु के मिलने से एक '**रेखा**' होती है। इस प्रकार तीन रेखाओं के मिलने से '**त्रिकोण**' या '**त्रसरेणु**' होता है। यह तीन '**द्व्यणुक**' से बनता है। यही '**अणु**' का प्रस्तार है, जिसे '**महत्**' कहते हैं। यही प्रत्यक्ष योग है क्योंकि '**विन्दु**' अप्रत्यक्ष है और '**द्व्यणुक**' भी अप्रत्यक्ष है। '**त्रिकोण**' से त्रि-मात्र परिणाम पदार्थ का बोध होता है। '**विन्दु**' मात्रा-परिणाम से परे है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त आपको त्रिकोण, योनि-चक्र में विराजमान, समझकर अपने हृदय में योग-युक्त मन से निहारते हैं, उनके चरणों में देव-गण प्रणाम करते हैं।

***

(९८७) श्रीअनघा

पाप या दुःख-रहिता। इससे अपहत पाप्मा का बोध होता है। इसकी पर्याय-वाचक संज्ञा निर्विकारा है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! जिसमें पाप, दुःख और व्यसन तीनों लेश-मात्र भी नहीं है, उन अनघा माता श्री ललिताम्बा का भजन करो और शीघ्र-से-शीघ्र स्वयं भी निष्पाप, निर्दुःख, निर्व्यसन हो जाओ।

***

(९८८) श्रीअद्भुत-चरित्रा

आश्चर्य-कारक चरितवाली अर्थात् जिसके चरित या कार्य अद्भुत या आश्चर्य-जनक हैं। इससे अघटन-घटन-पटीयसी है, ऐसा बोध होता है। 'सप्तशती' में भी उक्ति है–'चरितानि तवाद्भुतानि।'

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! अद्भुत चरिता माता श्री ललिताम्बा को भजो, पूजो, स्मरण करो और सभी प्रकार के दुष्फलों से बचो।

***

(९८९) श्रीवाञ्छितार्थ-प्रदायिनी

इष्ट अर्थात् अभिलषित पदार्थों को देनेवाली। इस संज्ञा से सर्वाशा-पूर्ति करनेवाली का बोध होता है। अथवा इससे 'सर्वाशा-परिपूरक-चक्र-स्वामिनी' या 'सर्व-काम-मुद्रेश्वरी' का बोध होता है, जिसका वासना-रूप है सापेक्षिक निर्विकल्प समाधि।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! जो स्मरण करने मात्र से ही समस्त मनो-वाञ्छित पदार्थ दे देती हैं, उन श्री ललिताम्बा को भजो और उन्हें भजते हुए चिन्मय हो जाओ।

***

(९९०) श्रीअभ्यासातिशय-ज्ञाता

अभ्यास से अधिक मात्रा में ज्ञात होनेवाली अथवा अत्यधिक अभ्यास से ही ज्ञात हो सकनेवाली। इस भाव के समर्थन में 'श्रुति' की उक्ति है–आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद् वेदान्त-चिन्तया।

'महर्षि वादरायण' का 'ब्रह्म-सूत्र'–'आवृत्ति-रस-कृदुपदेशात्' भी यही कहता है अर्थात् अत्यधिक अभ्यास द्वारा ही ब्रह्म-रूपिणी पराम्बा का ज्ञान होता है। इसी ज्ञान को परम गति या परम पद कहते हैं, जो अनेक जन्मों में सम्यक् प्रकार से सिद्ध होने पर प्राप्त होता है (गीता)–

अनेक जन्म-संसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।

◆◆प्रार्थना◆◆

जो विरिञ्चि आदि योग-निष्ठ देवों से भी सैकड़ों वर्ष लगातार प्रबल अभ्यास से जानी गई है, वह माता श्री ललिताम्बा मेरे हृदय में सदा प्रकाशित होवे।

***

(९९१) श्रीषडध्वातीत-रूपिणी

छहो प्रकार के उपासना मार्गों से परे। 'षडध्व' अर्थात् छः 'अध्वान' ये हैं–१. षट्-पदाध्वा, २. षट्-भुवनाध्वा, ३. षट्-वर्णाध्वा, षट्-तत्त्वाध्वा, ५. षट्-कलाध्वा और ६. षट्-मन्त्राध्वा। श्री-चक्र की 'षडाधारा-पूजा इसी की बोधक है।

अथवा इस संज्ञा से १. वेदाचार, २. वैष्णवाचार, ३. शैवाचार, ४. दक्षिणाचार, ५. वामाचार और ६. सिद्धान्ताचार—इन छहों से अतीत या परे 'कौल-मार्ग-रूपिणी' है, ऐसा बोध होता है।

अथवा इससे षट्-चक्र-स्थित साकिनी आदि योगिनी-स्वरूप अपूर्ण ब्रह्मोपासना से परे ब्रह्म-रन्ध्र-स्थित पूर्ण ब्रह्म-स्वरूपिणी चित्-परातीता महा-आद्या शक्ति या 'याकिनी-शक्ति' का बोध होता है। अथवा 'षडध्व' से 'कुलार्णवोक्त'–१. शिव, २. वैष्णव, ३. दौर्ग, ४. गणपति, ५. सौर और ६. चान्द्र — इन 'षडध्वानों' का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप सभी छहों उपासना-मार्ग से अतीत हो। सभी उपासक आपके मार्ग में आने की योग्यता प्राप्त करने में लगे रहते हैं। अध्व शोधन के बाद वे आपके पास पहुँचने के योग्य होते हैं।

***

(९९२) श्रीअव्याज-करुणा-मूर्ति

अव्याज अर्थात् निश्छल या अनौपधिकी जो करुणा है, उसकी मूर्ति अर्थात् पूर्ण-स्वरूपा। **'अव्याज'** से स्वाभाविक का बोध होता है। इससे किसी प्रकार या सर्व प्रकार उपाधि रहिता का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! यदि संसार के दुःखों से व्याकुल हो, तो निष्कारण करुणा की मूर्ति, सुधा बरसानेवाली, मन्द-मन्द मुसकानवाली माता श्री ललिताम्बा की शरण ग्रहण करो।

***

(९९३) श्रीअज्ञान-ध्वान्त-दीपिका

ज्ञान-रूपी अन्धकार की दीपिका-स्वरूपा। इससे महा-विद्या-रूपी प्रकाश-शक्ति का बोध होता है। भगवती का स्वाभाविक गुण है अविद्या का नाश करना, जिस प्रकार दीपक का स्वाभाविक गुण अन्धकार का नाश करना है। इसी कारण यह उपमा दी गई है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जिनकी आँखों में अविद्या का अन्धकार छा गया है, सत् मार्ग जिनसे छूट गया है, ऐसे लोगों के लिए अन्धकार के विनाश के लिए दीपिका जैसी सहायक एक अम्बा आप ही हो।

**

(९९४) श्रीआबाल-गोप-विदिता

बाल से लेकर गोप पर्यन्त जिसे जानते हैं। 'बाल' से किञ्चित् ज्ञानी और 'गोपयति इति गोपः' से विशेष ज्ञानी का तात्पर्य है। अथवा 'बाल-गोप' इस संयुक्त पद से सदा-शिव और कृष्ण का बोध होता है। अथवा 'बाल' से पामर के उप-लक्षणों का बोध होता है। इस भाव में हरि-हर से लेकर पामर भी इसे जानते हैं, ऐसा बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! आप अहं (मैं) की प्रतीति के चारों ओर विराजती हो। लोगों का जो अहं (मेरा) होता है, उसमें रहती हो। अहं का बोध चूँकि सबके हृदय में होता है, अतः आप आबाल-गोप-विदिता हो। यही कारण है कि विद्वान् आपको निरन्तर भजते है।

***

(९९५) श्रीसर्वानुल्लङ्घ्य-शासना

जिसका शासन सभी से अलङ्घनीय है। तात्पर्य कि भगवती प्रपञ्चेश्वरी के शासन के अधीन ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी हैं। कोई भी इसके प्रतिकूल नहीं जा सकता। इस भाव का समर्थन 'आनन्द-लहरी' का २४ वाँ पद करता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! आज्ञा-चक्र में जिसकी आज्ञा को ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि सभी देव, पितृ, असुर, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि मानते हैं, उन माता श्री ललिताम्बा को ध्याओ-भजो, जिससे तुम्हारी आज्ञा का भी सर्वत्र पालन हो।

***

(९९६) श्रीश्रीचक्र-राज-निलया

श्रीचक्र में, जो चक्रों में राजा अर्थात् सर्व-श्रेष्ठ है, रहनेवाली। श्रीचक्र समष्टि और व्यष्टि दोनों का व्यञ्जक है। इससे ऐसा बोध होता है कि भगवती पराम्बा परमात्मा और जीवात्मा-रूपा या उभयात्मक-स्वरूपिणी है। यथार्थतः भगवती का निलय अर्थात् वास-स्थान श्रीचक्र-स्थित विन्दु में है, जिस (विन्दु) से परमात्मा और जीवात्मा दोनों का बोध होता है। शास्त्रों का सर्न-सामत सिद्धान्त है-'श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः' अर्थात् शिव और जीव का शरीर श्री-चक्र है। 'शिवयो. से यद्यपि शिवा और शिव का भी तात्पर्य हो सकता है, परन्तु पूर्व-पक्ष ही यहाँ युक्त-तम है। इस सिद्धान्त का समर्थन है श्रीचक्र की वासना से, जो 'भावनोपनिषत्' में है।

◆◆प्रार्थना◆◆

भगवान् विष्णु हयग्रीव रूप में स्वयं श्रीयन्त्र-राज में जिन श्री ललिताम्बा को पूज कर सहस्त्र-नाम सुनाते हैं, उनकी भू-मण्डल में कौन पूजा नहीं करता है? सभी करते हैं। हम भी उनकी सदा पूजा करते रहें।

***

(९९७) श्रीश्रीमत्-त्रिपुर-सुन्दरी

श्री-युक्त त्रिपुर अर्थात् पर-शिव की सुन्दरी अर्थात् स्त्री या शक्ति। त्रिपुर से 'पर-शिव' का ही बोध होता हैं। शिव त्रिपुर-हर भी हैं, तथापि स्वयं त्रिपर भी हैं। त्रिपुर-हर क्यों हैं, यह पूर्व कहा जा चुका है। (**'श्री काली-कर्पूरादि-स्तवराज'** में इसकी विशद व्याख्या है।)

शिव को 'त्रिपुर' कहा गया है क्योंकि शिव (पर-शिव) में तीनों पुर अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, और रुद्र के शरीर या रूप या भाव सन्निहित हैं–'……**एवं त्रिभिः पुरैर्योमात्, त्रिपुरः परमः शिवः।'**

पर-शिव का शरीर क्रमशः **ब्रह्मा, विष्णु और महेश**–इन तीनों से बना है–ब्रह्मा से ऊपर का भाग, विष्णु से मध्य भाग और रुद्र से अधो-भाग। विशेष जानकारी के हेतु **'कालिका-पुराण'** देखिए।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जिस भक्त के हृदय में सिन्दूर जैसी अरुण शोभा प्रभावाली, ब्रह्मा-विष्णु-शिव तीन पुरोंवाली महा-माया-स्वरूपिणी माता श्री ललिताम्बा विलास करती हैं, उसकी आज्ञा के सभी वशीभूत होते हैं।

***

(९९८) श्रीशिवा

(९९९) श्रीशिव-शक्त्यैक-रूपिणी

उक्त दोनों संज्ञाओं के अनेक तात्पर्य हैं। पद-विच्छेद के अनुसार भी अनेक अर्थ हैं। **श्रीमती शिवा** और **शिव** की—शक्ति-द्वय की एक अर्थात् संयुक्त-स्वरूपा। इस प्रकार **शक्ति-शिव-सामरस्य-रूपिणी** का बोध होता है। सामरस्य है सम-रसता, जो परम साम्य अर्थात् अत्यन्ताभेद का बोधक है। **'श्रुति'** भी कहती है **'शक्ति-शक्ति-मतोरभेदः।'** इस अभेद-सम्बन्ध को **नित्याविना-भाव-सम्बन्ध** भी कह सकते हैं।

अथवा **'श्रीशिवा'** से धर्मी-शक्ति और **'शिव-शक्ति'** से धर्म-शक्तियों का बोध होता है। इन दोनों धर्मी और धर्म-शक्ति-द्वय की एकता या अभेद-रूपिणी है। ऐसा तात्पर्य भी युक्त है क्योंकि चित् या सत् और अचित् या असत् भी यही एक है। फिर इन दोनों की शक्तियाँ क्यों न एक अर्थात् अभिन्न हों ? ऐसा **'सप्तशती'** में भी उल्लेख है–

'यच्च किञ्चित् क्वचिद् वस्तु, सदसद् वाऽखिलात्मिके !
तस्य सर्वस्य या शक्तिः, सा त्वं किं स्तूयसे तदा ?।।'

'गीता' भी कहती है–'सदसच्चाहमर्जुन !'

अथवा शिव-शक्त्यात्मक युग्म-मन्त्र 'हंसः'-स्वरूपिणी है।

◆◆प्रार्थना◆◆

सुमुखी श्रीलक्ष्मी सदैव जिसका अनुकरण करती है, जो स्वकीय श्री से विश्व का कल्याण करती रहती है, जो सभी श्रियों का निधान है, वह माता श्री ललिताम्बा श्री शिवा मेरा कल्याण करे।

***

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्री ललिताम्बा! जो भक्त शिव-शक्ति-सामरस्य अथवा शिव-शक्ति-ऐक्य भाव से आपका यजन करता है, वह यजन करते हुए शिव-शिवा के अद्वैत ज्ञान को प्राप्त हो जाता है।

***

(१०००) श्रीललिताऽम्बिका

ललिता माता। 'ललिता' या सुन्दरी की परिभाषा है–'लोकानतीत्य ललते, ललिता तेन सोच्यते।' अर्थात् लोकों या भावों से परे होती हुई लोकों या भावों को सुन्दर करती है या प्रकाशित करती है, इसी हेतु इसे (इस महा-शक्ति या महा-विद्या को) 'ललिता' कहते हैं।

ललिता की पर्याय-वाचक संज्ञा 'सुन्दरी' है। इसका यह कारण है कि इसमें सभी भाव सुन्दर हैं और क्या! इसके आयुध भी सुन्दर हैं, जिनकी व्याख्या पूर्व हो चुकी है। 'काम-शास्त्र' भी कहता है–'ललितं रति-चेष्टितम्।' संक्षेप में इस पद (संज्ञा) से 'पराऽम्बा' का बोध होता है।

अथवा 'प्रयाग-पीठ' की अधिष्ठात्री देवी की संज्ञा 'ललिता' है। इस भाव में विग्रह-रूपिणी का भी बोध होता है।

श्रीमल्ललिता की यह सहस्र-नामावली अर्ध श्लोक तक आकर सम्पूर्ण होती है। पूर्ण श्लोक में समाप्ति क्यों नहीं हुई और अर्ध-श्लोक में क्यों हुई, इसका भी कारण रहस्य-गर्भित है। अर्ध-श्लोक से 'अर्ध-मात्रा' का तात्पर्य है, जिससे कूटस्थ ब्रह्म की रहस्यावस्था का बोध होता है। यह रहस्य केवल सद्-गुरु से ही जाना जा सकता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

मणि-द्वीप के सभा-मण्डप के बीच में, पञ्च ईश्वरों के बने सिंहासन पर विराजमान, पाश-अंकुश-वर और अभय युक्त हाथोंवाली श्री ललिताम्बा मुझे सदैव विघ्नों से बचावें, मेरी रक्षा करें।

'चण्डी'-पुस्तक-माला की कुछ उपयोगी पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य
➢ शाबर-मन्त्र-संग्रह (१-१२ भाग)	५१५/-
➢ मन्त्र-कल्पतरु (पुष्प १-२)	७०/-
➢ तन्त्रोक्त शब्द-ब्रह्म-साधना	४०/-
➢ श्री श्रीविद्या-सपर्या-वासना	१००/-
➢ सौन्दर्य-लहरी के यन्त्र-प्रयोग	२०/-
➢ सौन्दर्य-लहरी (संस्कृत एवं हिन्दी पद्यानुवाद सहित)	१५/-
➢ सार्थ सौन्दर्य-लहरी	१००/-
➢ श्रीचक्र-रहस्य	२०/-
➢ श्री श्रीविद्या-खड्ग-माला	१५०/-
➢ श्रीविद्या-स्तोत्र-पंचकम्	४५/-
➢ षोडश-लक्ष्मी श्रीललिता-पूजा	२५/-
➢ चक्र-पूजा के स्तोत्र	३०/-
➢ श्रीकमला-कल्पतरु (३ पुस्तकें)	१२०/-
➢ दीपावली विशेषांक	५५/-
➢ रासलीला-विज्ञान	१०/-
➢ श्रीराम-नाम- अङ्क	१०/-
➢ कुम्भ-पर्व-अङ्क	१५/-
➢ हिन्दी कुलार्णव तन्त्र	१००/-
➢ हिन्दी प्राण-तोषिणी तन्त्र	७०/-
➢ हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र	१५०/-
➢ काश्मीर की वैचारिक परम्परा	१०/-
➢ गङ्गा-यमुना-सरस्वती पूजा अङ्क	१०/-
➢ धर्म-चर्चा	१०/-
➢ दकारादि श्रीदुर्गा-सहस्त्र-नाम	२०/-
➢ बीजात्मक सप्तशती	२५/-
➢ हिन्दूओं की पोथी	२५/-
➢ श्रीगुरु-तन्त्र	१५/-
➢ दीपावली पूजा-विधि	२५/-

विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें

श्रीचण्डी-धाम

अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-०६ ☎ फोन ०५३२-२५०२७८३, ९४५०२२२७६७
E-mail : Chandi_dham@rediffmail.com

पर-ब्रह्म की चिन्मय-शक्तियाँ

जय माँ भैरवी!
परब्रह्म-रूपां भजामि

जय माँ धूमावती!
परब्रह्म-रूपां भजामि

जय माँ बगला!
परब्रह्म-रूपां भजामि

जय माँ मातंगी!
परब्रह्म-रूपां भजामि

जय माँ कमला!
परब्रह्म-रूपां भजामि

भगवती श्रीललिता सम्बन्धी उपयोगी पुस्तकें
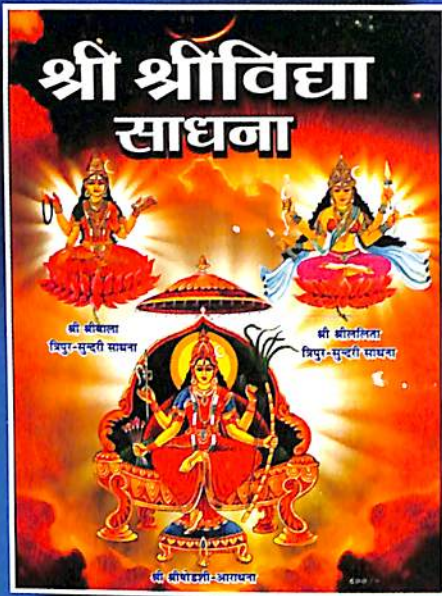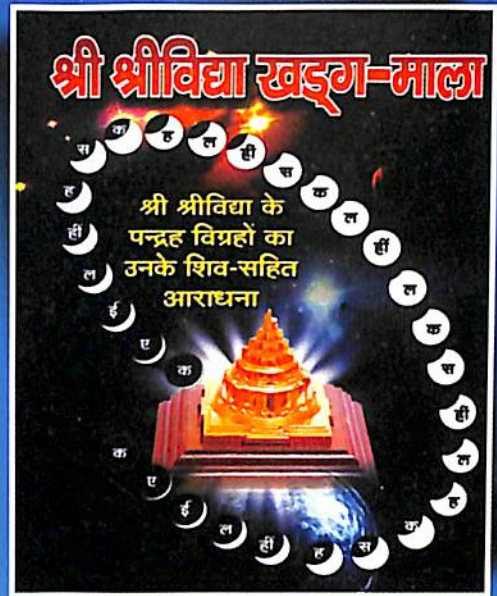
अनुदान ४००/-

अनुदान १५०/-

अनुदान २५/-

अनुदान ५०/-

मँगाने के लिए सम्पर्क करें :
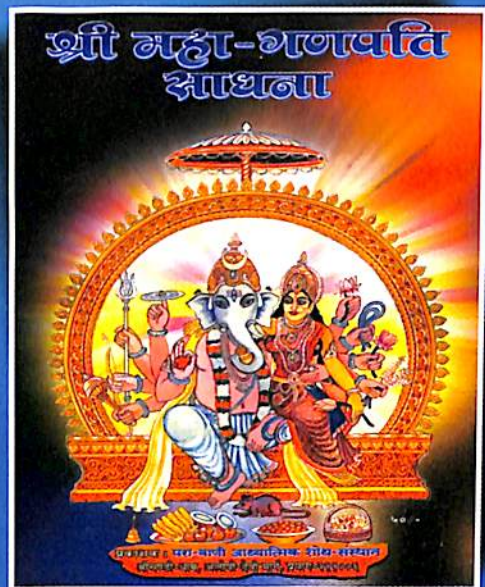
श्री चण्डी-धाम, कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६

दूरभाष : ०५३२-२५०२७८३, ०९४५०२२२७६७